राजनीतिक अर्थशास्त्र

चुनिंदा निबंध

फ्रेडरिक बास्तियात

फ्रेंच से अनुवाद

सीमौर केन

संपादन

जॉर्ज बी. डी हुसजार

प्रस्तावना

एफ.ए. हायक

फाउंडेशन फॉर इकानॉमिक एजुकेशन

इरविंगटन ऑन हडसन, न्यूयॉर्क

लेखक के बारे में

फ्रेडरिक बास्तियात (1801-1850) एक फ्रांसीसी अर्थशास्त्री, राजनीति के जानकार और लेखक थे। वे फ्रांस में मुक्त व्यापार आंदोलन के उसकी 1840 में शुरूआत से लेकर अपनी असामयिक मौत तक लीडर रहे। उनकी जिंदगी के पहले 45 वर्ष आज़ादी के समर्थन में प्रखर लेखन के लिहाज से बेहद प्रभावी पांच अंतिम वर्षों की तैयारियों में ही बीते।

बास्तियात साप्ताहिक अखबार *ले लिब्र एचेंज* (*Le libre-échange*) के संस्थापक सदस्यों में से थे। उनका कई पत्रिकाओं में योगदान था और रोजमर्रा की समस्याओं पर निकलने वाले पैम्फ्लेट्स और कई भाषणों पर उनकी छाप होती थी। उनका अधिकांश लेखन प्रत्यक्ष तौर पर 1848 की क्रांति के ठीक पहले या बाद का था। यह एक ऐसा दौर था जब फ्रांस तेजी से समाजवाद को अपना रहा था। लेजिस्लेटिव असेंबली में डेप्युटी के तौर पर बास्तियात ने निजी जायदाद के अधिकारों के लिए जमकर संघर्ष किया, लेकिन बदकिस्मती से उनके अधिकांश साथियों ने उनकी अनदेखी की। फ्रेडरिक बास्तियात को हमेशा आज़ादी के एक ऐसे अग्रणी समर्थक के तौर पर याद किया जाएगा, जिनका लेखन आज भी सामयिक है।

अंग्रेजी संस्करण की प्रस्तावना

फ्रेडरिक बास्तियात ने अनगिनत ऐसे निबंध या पैम्फ्लेट्स लिखे जो उनके विचारों को सब तक पहुंचाते थे और गलतियों का भी खुलासा करते थे। उनके कई महत्वपूर्ण लेखों और पैम्फ्लेट्स को इस संस्करण में शामिल किया गया है। इनमें से 'द लॉ' और 'व्हाट इज सीन एंड व्हाट इज नॉट सीन' काफी मशहूर हैं, अन्य शायद इतने लोकप्रिय नहीं। हैनरी हेजलिट ने अपनी किताब *इकोनोमिक्स इन वन लेसन* में 'व्हाट इज सीन एंड व्हाट इज नॉट सीन' के बारे में लिखा है, 'इसे बास्तियात के पैम्फ्लेट्स में उल्लेखित सोच का आधुनिकीकरण, विस्तार और सामान्यीकरण कहा जा सकता है।'

वर्तमान खंड (वॉल्यूम) में निबंधों के प्रबंध के लिए संपादक जिम्मेदार है।

यहां बास्तियात के तमाम लेखों के मूल फ्रैंच संस्करण के अंग्रेजी में यथासंभव जस के तस अनुवाद की कोशिश की गई है। वर्तमान अनुवाद में तीन मूल संस्करणों का संदर्भ भी शामिल किया गया है। तीन तरह के नोट शामिल किए गए हैं: अनुवादक के नोट्स आम आदमी के लिए हैं और यह व्यक्तियों और शब्दावली से संबंधित हैं। बास्तियात के नोट बिना किसी ऐसे संकेत चिन्हों के हैं। केवल अनुवादक के नोट्स ही पेजों के नीचे दिए हुए हैं। संपादक और बास्तियात के नोट्स खंड (वॉल्यूम) के अंत में हैं। ये अंतिम दो ही सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण हैं, लेकिन सामग्री को एक जगह करके जटिलता बढ़ाने की बजाय पठनीयता को बढ़ाने की कोशिश की गई है। जहां फ्रांसीसी अनुवादक ने *इकानॉमिक हार्मोनीज* या *इकानॉमिक सोफिज्म* का मूल संदर्भ दिया है, वहां अंग्रेजी अनुवाद में दिए गए संदर्भ ने उसकी जगह ले ली है।

हालांकि बास्तियात के अंग्रेजी अनुवाद के तीनों खंड एक ही साथ प्रकाशित किए गए हैं, लेकिन फिर भी अनुवादक के नोट्स और संपादकीय प्रस्तावना में कुछ बातें दोहराई गई हैं। यह जरूरी है क्योंकि हो सकता है कि कुछ को इन तीन खंडों में से पहला खंड ही मिल सके। यही वजह है कि सभी खंड अपने आप में परिपूर्ण ही हैं।

संपादक, सीमोर केन, डल्यू. हैडन बोयर्स को धन्यवाद देना चाहता है, एफ.ए. हायक को परिचय (इंट्रोडक्शन) लिखने के लिए धन्यवाद। आर्थर गोडार्ड और विलियम वोकर फंड को भी धन्यवाद।

- जॉर्ज बी. डी. हुज़ार

परिचय

फ्रेडरिक बास्तियात को एक आर्थिक विचारक के तौर पर मिली ख्याति पर सवालिया निशान लगाने वाले भी यह तो मानेंगे कि वे समसामयिक विषयों पर लिखने वाले एक 'जीनियस' थे। जोसेफ शूम्पटर तो उन्हें 'इतिहास का सबसे मेधावी आर्थिक पत्रकार' कहते हैं। आम आदमी के लिए उनके द्वारा लिखे गए निबंधों के इस पहले खंड के परिचय में हम बात को बस यहीं तक सीमित कर देंगे। कुछ लोग हो सकता है शूम्पटर के बास्तियात को विचारक नहीं मानने की बात को बास्तियात के कद को कम किए बगैर स्वीकार सकते हैं। यह सच है कि एक लेखक के तौर पर अपने बहुत छोटे से कैरियर के अंत तक अपनी धारणाओं के सैद्धांतिक खुलासे के प्रयास में वह विषय के जानकारों को संतुष्ट नहीं कर पाए थे। वाकई यह चमत्कार होता कि सार्वजनिक मामलों पर केवल पांच साल ही बतौर नियमित लेखन और तेजी से उनकी ओर बढ़ती मौत से जूझने के दौरान वे एक स्थापित धारणा के खिलाफ इस मामले में भी कामयाब हो जाते। लेकिन क्या ऐसा नहीं लगता कि महज 49 वर्ष की उम्र में मौत ने ही उन्हें ऐसा करने से रोक दिया। उनका विवादित लेखन, जो कि उनके द्वारा छोड़ा गया सबसे महत्वपूर्ण लेखन है, यह बताता है कि उनको इस बात का ज्ञान था कि किस बात का महत्व है और उनमें मामले की तह तक जाने का एक नैसर्गिक गुण भी था, जो उनको इस विषय में योगदान देने में काफी मदद कर सकता था।

वर्तमान खंड के पहले ही निबंध का बहुचर्चित शीर्षक *'व्हाट इज सीन एंड व्हाट इज नॉट सीन'* ही इसे साबित कर देता है। किसी ने भी एक तार्किक आर्थिक नीति के मूल में रची-बसी दिक्कतों को इस तरह एक पंक्ति में इतनी सटीकता के साथ नहीं सहेजा था और मैं कहना चाहूंगा कि आर्थिक आज़ादी के लिए भी। समूची सोच को इतने कम शब्दों में समेटने की क्षमता के कारण ही मैंने पहली ही पंक्ति में उनका जिक्र 'जीनियस' के तौर पर किया। यह वाकई ऐसा लेखन है जिसके इर्द-गिर्द उदार आर्थिक नीति का ताना-बाना बुना जा सकता है। और हालांकि यह शीर्षक केवल पहले खंड का ही है, यह सभी के लिए एक मार्गदर्शक सोच की तरह बन जाता है। अपने वक़्त की तत्कालीन भ्रांतियों के विरोध में बास्तियात इस सोच का बार-बार खुलासा करते हैं। मैं बाद में यह बताऊंगा ही कि उनके विचार आज आधुनिक आवरण में छिप गए हैं, लेकिन उनका मूल बास्तियात के काल से आज तक नहीं बदला है। लेकिन उससे पहले मैं उनकी मूल सोच के आम महत्व का जिक्र करना चाहता हूं।

आम भाषा में कहा जाए तो अगर हम आर्थिक नीति के उपायों को उनके तात्कालिक और निकट भविष्य के परिणामों के लिहाज से ही देखेंगे तो हम न केवल कुछ व्यावहारिक हासिल

करने से वंचित रह जायेंगे बल्कि हम आज़ादी पर अंकुश लगाएंगे और हमारे उपायों से फायदे की बजाय नुकसान ही ज्यादा होगा। आज़ादी इसलिए जरूरी है कि हर एक व्यक्ति को अपनी परिस्थितियों और जरूरतों के लिहाज से अपनी मर्जी से काम करने का मौका मिले। इसलिए हम नहीं जानते कि उनकी आज़ादी पर अंकुश लगाकर हम उन्हें क्या हासिल करने से रोक रहे हैं। हर तरह का प्रतिबंध इसी तरह का एक अंकुश ही होता है। वे हालांकि हर बार कुछ हासिल करने के लिए ही लगाए जाते हैं। सरकार के कदम के परिणामों को देखने के विपरीत हम हर एक के फायदे को महज एक संभावना ही मान सकते हैं, लेकिन यह हर व्यक्ति के फायदे का तो शायद ही हो। परिणामस्वरुप, अगर ऐसे मामलों में आम आज़ादी की धारणा की बजाय हर एक व्यक्ति को अलग-अलग फायदा पहुंचाने का प्रयास होता है, तो हर एक मामले में आज़ादी की हार ही होगी। बास्तियात की अपनी मर्जी की आज़ादी का मत सही था, जिसे कभी परिस्थितियों का हवाला देकर नहीं रोकना चाहिए। आज़ादी का अगर तभी सम्मान हो जब उसके खात्मे से होने वाले फायदे को गिनाया जा सके, तो भी आज़ादी का शायद हर एक पहलू प्रभावित ही होगा।

बास्तियात ने अपने तर्कों से अपने वक़्त की बार-बार आने वाली तय भ्रांतियों पर ही निशाना साधा। यह तय है कि उस वक़्त उनको बड़ी आसानी से इस्तेमाल कर लेने वाले लोग आज उन्हें इतने भोलेपन से इस्तेमाल नहीं कर सकेंगे। लेकिन पाठक इस खुशफहमी में न रहे कि वे भ्रांतियां आज समकालीन आर्थिक बहसों में महत्वपूर्ण भूमिका नहीं निभातीं। फर्क है तो इतना कि आज वे आधुनिकता के आवरण में हैं और इसलिए उन्हें पहचान पाना ज्यादा मुश्किल हो गया है। वह पाठक जो इन भ्रांतियों को उनके साधारण रुप में पहचानना सीख गया है, कम से कम ज्यादा वैज्ञानिक दिख रहे तर्कों के वैसे ही परिणामों को शक की निगाह से तो देखेगा ही। हालिया अर्थशास्त्र का यह गुण सा बन गया है कि नित नए तर्कों से उसने पूर्वाग्रहों को स्थापित करने का प्रयास सा चला रखा है क्योंकि शब्दजालों में बंधकर वे बेहद दिलकश और सुविधाजनक लगने लगते हैं। जैसेः खर्च करना एक अच्छी बात है और बचत खराब, बेकार के लाभ और पूंजी अधिकांश लोगों को बिगाड़ देते हैं, पैसा सरकार के हाथ में हो तो लोगों के हाथ में होने से ज्यादा फायदा देगा, यह सरकार का कर्तव्य है कि वह यह सुनिश्चित करे कि हर एक को उसका हक मिले। इत्यादि।

इन सभी विचारों की ताकत आज हमारे इस युग में भी बरकरार है। फर्क है तो केवल इतना कि उनसे मुकाबले के लिए आज बास्तियात नहीं हैं। बास्तियात उस दौर में पेशेवर अर्थशास्त्रियों के गुट में थे जो उस धारणा का मुखर विरोध करते थे जिससे कुछ तबके विशेष के लोगों को ही फायदा मिलता था। आज ऐसे ही प्रस्ताव प्रभावशाली *स्कूल ऑफ*

इकोनोमिक्स की नई जमात द्वारा बहुत ही प्रभावशाली तरीके से पेश किए जाते हैं। आम आदमी के लिए जिसे इस विषय की ज्यादा जानकारी नहीं है। मुश्किल ही है कि बास्तियात जिन भ्रांतियों से लड़े हों वो आज रूप बदलकर फिर मुंह बाएं न खड़ी हो। मैं केवल एक ही उदाहरण दूंगा। बास्तियात के बहुचर्चित आर्थिक व्यंग्य, *द पेटिशन ऑफ द कैंडलमेकर्स अगेन्स्ट द कम्पीटिशन ऑफ द सन* जिसमें सूरज कि रोशनी रोकने के लिए तमाम खिड़कियों को बंद करने की सलाह दी गई थी ताकि मोमबत्ती बनाने वाले समृद्ध हों और उनके कारोबार के जरिये हर एक व्यक्ति समृद्ध हो। या फिर अर्थशास्त्र के इतिहास पर एक बहुचर्चित फ्रांसीसी पाठ्यपुस्तक के ताजा संस्करण का यह फूटनोट, 'यह बात गौर करने लायक है कि कीन्स के मुताबिक बेरोजगारी की अवधारणा और गुणक के सिद्धांत (*थ्योरी ऑफ मल्टीप्लायर*) के आधार पर मोमबत्ती बनाने वालों का यह तर्क वास्तव में पूरी तरह से वैध है।'

जागरुक पाठक देखेंगे कि बास्तियात ने जिन अनगिनत समस्याओं से संघर्ष किया उनसे हम रूबरू हैं। हालांकि हमारे वक़्त के मुख्य खतरों का जिक्र इन पन्नों में नहीं हैं। हालांकि उनके वक़्त में कर्ज के लिए कई अजीबोगरीब प्रस्तावों का सामना करना पड़ता था, सरकारी घाटे से सीधी महंगाई (इन्फ्लेशन) उनके वक्त में बड़ा खतरा नहीं थी। उनके लिए खर्च में बढ़ोतरी के मायने थे करों में तत्काल और अनिवार्य बढ़ोतरी। कारण जाहिर सा है, उन तमाम लोगों की तरह जिन्होंने अपनी जिंदगी में भीषण महंगाई देखी हो, मुद्रा का लगातार अवमूल्यन शायद उनके जमाने के लोगों की समझ से बाहर होता। इसलिए अगर पाठक खुद को बास्तियात द्वारा उल्लेखित आम भ्रांतियों से बेहतर समझकर उनको खारिज करना चाहता है, तो उसे याद रखना चाहिए कि एक सदी पहले हुआ यह व्यक्ति कई अन्य मामलों में हमारी पीढ़ी से ज्यादा बुद्धिमान था।

- एफ.ए. हायक

कानून[1]

कानून दूषित (परवर्टेड) हो गया! और इसके साथ ही देश की तमाम सामूहिक शक्ति भी! कानून मेरी राय में न केवल अपने उचित निष्कर्ष से परे हट गया, बल्कि इसे तो एक बिलकुल ही विपरीत परिणाम हासिल करने का जरिया बना दिया गया है! हर किस्म की लालसा की पूर्ति पर अंकुश की बजाय कानून उसकी पूर्ति का साधन बन गया है। कानून खुद ही उस असमानता को बढ़ावा दे रहा है जिसे दंडित करने के लिए उसे बनाया गया था। वाकई अगर ऐसा है तो यह एक गंभीर मामला है। जिसके लिए मैं अपने तमाम नागरिक साथियों का ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा।

हमारे पास भगवान का दिया एक ऐसा तोहफा जो हर एक तोहफे को अपने भीतर समेटे हुए हैः जिंदगी। शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक।

लेकिन जिंदगी आत्मनिर्भर नहीं है। जिसने भी हमें जिंदगी दी उसने उसे सहेजने, उसे विकसित करने और उसे परिपूर्ण बनाने की जिम्मेदारी भी हमें सौंपी है।

उस लिहाज से उसने हमें मूलभूत काबिलियत (फैकल्टी) और विभिन्न किस्म के संसाधन भी दिए हैं। इन संसाधनों को हम अपनी काबिलियत (फैकल्टी) से आत्मसात (एसिमिलेशन) करते हैं और फिर उनका समायोजन (एप्रोप्रिएशन) करते हैं जिससे हमारी जिंदगी एक तय मार्ग पर चलती है।

अस्तित्व, काबिलियत (फैकल्टी) और समायोजन, दूसरे शब्दों में कहें तो व्यक्तित्व, आज़ादी और जायदाद, आखिर एक इंसान यही तो है।

इन तीनों ही की बात की जाए तो बिना किसी लोकप्रिय छलावे भरे बयान (डेमागोगिक विबिलिंग) के कहा जा सकता है कि वह किसी भी इंसानी कानून से पुरातन और श्रेष्ठ है।

व्यक्तित्व, आज़ादी और जायदाद का अस्तित्व इंसान के बनाए कानून के कारण नहीं है। इसके विपरीत व्यक्तित्व, आज़ादी और जायदाद के पहले से ही अस्तित्व में होने के कारण ही इंसान कानून बनाता है।

फिर आखिर कानून या है? जैसा कि मैं पहले भी कहीं और कह चुका हूं, यह एक व्यक्ति को वैध तरीके से आत्मरक्षा का अधिकार देने वाला एक सामूहिक संगठन है।[2]

हममें से हर एक को प्रकृति से, भगवान से अपने व्यक्तित्व, अपनी आज़ादी और अपनी जायदाद की रक्षा का अधिकार मिला हुआ है। क्योंकि ये ही वो तीन मूल तत्व हैं जीवन बनाते हैं या उसे बरकरार रखने का काम करते हैं। ऐसे तत्व जो एक-दूसरे के पूरक हैं और

जिनको एक-दूसरे के बगैर समझा भी नहीं जा सकता। हमारी काबिलियत (फैकल्टी) का क्या मायने है अगर यह हमारे व्यक्तित्व की वृद्धि (एक्सटेंशन) न हो तो, जायदाद क्या है अगर वह हमारी काबिलियत (फैकल्टी) की वृद्धि (एक्सटेंशन) न हो?

अगर हर व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व, अपनी आज़ादी, अपनी जायदाद की रक्षा का अधिकार है, ताकत से ही सही, तो फिर कुछ लोगों को एकत्रित होकर आपसी समझबूझ से एक सामूहिक बल बनाने का भी अधिकार है, जो सबकी रक्षा कर सके।

सामूहिक अधिकार के अपने सिद्धांत हैं, इसका प्रयोजन (रेसों डीएत्रे), इसका विधिसम्मत आधार, व्यक्तिगत अधिकार के लिहाज से और सामूहिक बल का तार्किक तौर पर और कोई अन्य लक्ष्य नहीं होना चाहिए, केवल व्यक्तिगत बल के सिवाय, जिसके विकल्प के तौर पर इसको तैयार किया गया है।

इस तरह जैसे एक व्यक्ति विधिसम्मत तरीके से दूसरे व्यक्ति के व्यक्तित्व, आज़ादी और जायदाद के खिलाफ बल का इस्तेमाल नहीं कर सकता, इसी वजह से सामूहिक बल विधिसम्मत तरीके से किसी व्यक्ति या वर्ग के व्यक्तित्व, आज़ादी और जायदाद के खिलाफ इस्तेमाल नहीं किया जा सकता।

क्योंकि बल का ऐसा विकृत इस्तेमाल, एक या दूसरे किसी और मामले में हमारे आधारवाक्य के लिहाज से विरोधाभासी होगा। कौन यह कहने की हिम्मत जुटाएगा कि हमें जो ताकत मिली है वह अपनी रक्षा के लिए नहीं अपने भाई के समान अधिकारों की समाप्ति के लिए दी गई है? और अगर यह व्यक्तिगत तौर पर बल के इस्तेमाल के लिए सही नहीं है तो फिर यह सामूहिक बल के मामले में कैसे सही हो सकती है, जो कुछ और नहीं अलग-अलग बलों का एक संयुक्त संगठन मात्र है?

इसलिए अगर कोई बात स्वतःसिद्ध (सेल्फएविडेंट) है तो वह यह हैः कानून प्राकृतिक नियमों की विधिसम्मत आत्मरक्षा करने वाला संगठन है, यह व्यक्तिगत बल की जगह सामूहिक बल के इस्तेमाल का विकल्प है, उसी परिधि में काम करना जिसमें व्यक्तिगत तौर पर काम किया जाता रहा है, वह करने का अधिकार जो उन्हें व्यक्तिगत तौर पर हासिल थाः व्यक्ति, आज़ादी और जायदाद के अधिकारों की सुरक्षा, हर मामले में न्याय को ही सर्वोपरि रखने का काम।

और अगर कोई देश इस बात को आधार बनाकर ही गठित हुआ है तो मुझे लगता है कि वहां व्यवस्था वहां हकीकत और सैद्धांतिक दोनों ही तरीके से कायम रहेगी। मुझे लगता है कि ऐसा देश सबसे साधारण, सबसे मितव्ययी, सबसे कम बोझ वाला, सबसे कम परेशान, सबसे

कम आक्रामक, सबसे ज्यादा न्यायसंगत और परिणामस्वरुप कल्पना को खरा करने वाली सबसे स्थिर सरकार वाला होगा। फिर उसका राजनीतिक स्वरुप चाहे जो हो।

क्योंकि ऐसे शासन में हर कोई इस बात को समझेगा कि जिंदगी का पूरा मजा और तमाम जिम्मेदारियां भी उसके ही हाथ में हैं। जब तक उसको व्यक्तिगत तौर पर सम्मान मिले, उसके श्रम का विकल्प मुक्त हो और किसी भी अन्यायपूर्ण स्थिति में भी मेहनत का फल उसे ही मिलेगा, कोई व्यक्ति सरकार से टकराव नहीं करेगा। जब हमारा भाग्योदय होगा तो हमें इस कामयाबी के लिए केवल खुद को ही धन्यवाद नहीं देना चाहिए, लेकिन जब दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति हो हमें विषम परिस्थितियों को दोष नहीं देना चाहिए जैसे कि किसान ओलों या पाले को दोष देते हैं। हमें तो ऐसे में भी सुरक्षा का ही एहसास होना चाहिए।

आगे इस बात की भी पुष्टि की जा सकती है कि निजी मामलों में सरकार के दखल नहीं देने के कारण, आवश्यकताएं और संतोष स्वाभाविक क्रम में ही विकसित होंगे। हमें गरीब परिवारों को साहित्य से जुड़ने को तब तक नहीं कहना चाहिए जब तक कि उनके पास खाने को रोटी न हो। हमें देश की कीमत पर शहरों या शहरों की कीमत पर देश का विकास नहीं करना चाहिए। हमें पूंजी, श्रम और आबादी का भारी-भरकम विस्थापन नहीं होने देना चाहिए। ये सभी कानूनों के कारण ही होता है। विस्थापन तो हमारे अस्तित्व के आधार को ही अनिश्चित और संदिग्ध बना देता है। और ऐसे में सरकार की जिम्मेदारी और अधिक बढ़ जाती है।

दुर्भाग्य से कानून किसी भी तरह से इसकी मूल भूमिका तक सीमित नहीं है। यह केवल तटस्थ और विवादास्पद मसलों में मौजूद नहीं है, जहां इसने अपने विधिसम्मत काम को छोड़ दिया है। इसने तो और बुरा काम किया है, इसने तो अपने काम से ठीक विपरीत काम किया है, इसने अपने ही उद्देश्य को खत्म कर दिया है। इसे उस न्याय को खत्म करने के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है जिसकी रक्षा के लिए इसे बनाया गया था। अधिकारों की उस सीमा के उल्लंघन से उसने मामला बिगाड़ दिया है जिसका सम्मान ही इसका मिशन था। इसने सामूहिक बलों को ऐसे लोगों के हाथ का खिलौना बना दिया है जो बिना किसी जोखिम और बिना झिझक, व्यक्ति, आज़ादी और दूसरों की जायदाद के खिलाफ उसका दोहन करना चाहते हैं। इसने लूटपाट को एक अधिकार बना दिया है इसे बचाने के लिए और अपराध को एक विधिसम्मत सुरक्षा कवच बना दिया है इसे सजा देने के लिए।

आखिर कानून का यह विकृत रूप कैसे हासिल किया गया? आखिर इसके परिणाम क्या रहे हैं?

कानून को दो बिलकुल ही अलग कारणों के प्रभाव ने विकृत किया हैः एक नासमझी भरे स्वार्थ ने और दूसरा झूठे परोपकार ने।

स्वरक्षण और आत्मविकास सभी लोगों की आम आकांक्षा होती है। ताकि हर एक व्यक्ति को अपनी काबिलियत (फैकल्टी) और अपने उत्पादों को खुले इस्तेमाल की छूट दी जाए तो सामाजिक विकास अनवरत, अबाधित और अचूक होगा।

लेकिन एक और मनोवृत्ति और है जो लोगों में आम है। वह है जीने की और विकसित होने की, जब भी उन्हें मौका मिले दूसरे की कीमत पर भी। यह कोई अविचारी आरोप नहीं है न ही यह दिमाग की आत्मग्लानि का ही हिस्सा है। इतिहास इस बात का गवाह है। उसके कई पन्ने लगातार लड़ाईयों, बड़ी संख्या में विस्थापन, अफसरों की निरंकुशता, गुलामी की सार्वभौमिकता, आर्थिक घोटालों और एकाधिकारों से पटे पड़े हैं।

यह शोकजनक मनोवृत्ति इंसान की ही आदिम, सार्वभौमिक और अपराजेयता की भावना की देन है, जो उसे अपने ही भले के लिए और दर्द से बचने के लिए उकसाती है।

इंसान जिंदगी आनंद के साथ तभी जी सकता है जब वह लगातार मेलजोल बढ़ाए और हर काम मिल-जुलकर करे। यानी काम में अपनी काबिलियत और श्रम के लगातार इस्तेमाल के साथ। यही जायदाद का मूल है।

लेकिन वास्तविकता में वह अपने साथियों की मेहनत की कमाई को भी इस्तेमाल कर जिंदगी का आनंद उठा सकता है। यही लूट का मूल है।

अब चूंकि श्रम में कष्ट उठाना पड़ते हैं और कष्टों से बचना इंसान की एक मनोवृत्ति होता यह है और इतिहास इस बात का गवाह है कि लूटपाट श्रम से कम मुश्किल है, यह कायम रहता है और न तो धर्म और न ही नैतिकता, इस मामले में ऐसा होने से रोक सकती है।

तो आखिर यह लूटपाट रुकती कब है? जब यह श्रम से ज्यादा मुश्किल और ज्यादा खतरनाक बन जाती है?

जाहिराना तौर पर कानून का उद्देश्य इस खतरनाक प्रवृत्ति का विरोध होना चाहिए, सामूहिक बल के जरिये बाधा बनाकर। यानी कानून को लूटपाट की बजाय जायदाद वाले पक्ष का साथ देना चाहिए।

लेकिन कानून अधिकांशतया एक आदमी या एक समूह विशेष द्वारा बनाया जाता है। और चूंकि कानून बिना प्रतिबंधों और मुख्य बल के कायम नहीं रह सकता, इसलिए वह इस ताकत को उन लोगों के हाथ में दे देता है जो कानून बनाते हैं।

इस न टाली जा सकने वाली घटना का, इंसान के दिल में मौजूद शोकजनक प्रवृत्ति ही दुनिया भर में कानून के विकृत होने के कारण को बयान कर देती है। यह समझ में आ जाता है कि किस तरह से अन्याय को रोकने के लिए बना कानून इसका साधन बनकर रह जाता है। एक अजेय साधन। यह भी समझा जा सकता है कि लेजिस्लेटर के अधिकार और लाभ के अनुपात में ही बाकी मानव जाति में कानून नष्ट होता जाता है, लोगों के अधिकारों के मामले में गुलामी, लोगों की आज़ादी के मामले में दमन और जायदाद के मामले में लूट के रूप में।

यह इंसान का स्वभाव है कि वह उस अन्याय के खिलाफ प्रतिक्रिया देता है, जो उसके साथ हो रहा है। इसलिए जब लूटपाट किसी वर्ग विशेष को मदद पहुंचाने के लिए कानून के जरिये की जाती है तो लोग शांतिपूर्ण या क्रांतिकारी तरीके से इसका विरोध कर नया कानून बनाने के लिए मजबूर करते हैं। ये वर्ग, अपनी शिक्षा-दीक्षा के स्तर से अपना राजनीतिक लक्ष्य हासिल करने के लिए दो बिलकुल अलहदा प्रस्ताव रख सकता है। या तो वे इस कानूनी लूटपाट (लीगल प्लंडर) के खत्म करने की इच्छा रखते हैं या फिर वे इसमें अपना अधिकार चाहते हैं।

उस देश के लिए विलाप ही किया जाता है जहां कानूनी लूटपाट में हक मांगने वालों का बहुमत हो जाए और एक वत ऐसा आए जब वे सत्ता पर ही काबिज होकर कानून बनाने की ताकत हासिल कर लें!

उस वक़्त तक, कानूनी लूटपाट केवल कुछ लोगों द्वारा अधिकांश के खिलाफ की जाती रहेगी। जैसा कि देशों में होता रहा है कि कानून बनाने का अधिकार चंद लेजिस्लेटरों के हाथ में ही होता है। लेकिन अब यह सार्वभौमिक हो गया है, अब उसका हिसाब सार्वभौमिक लूटपाट से बराबर किया जाता है। खत्म करने की बजाय सामाजिक अन्याय को सर्वसामान्य बना दिया गया है। जैसे ही किसी भी तरह की विरासत से वंचित लोगों को उनके राजनीतिक अधिकार मिलते हैं तो उनकी पहली सोच लूटपाट की इस रवायत को खत्म करना नहीं है (इससे उनमें पहले से ज्यादा समझदारी आएगी), बल्कि वे तो दूसरे वर्ग के दमन के लिए तंत्र बनाने में जुट जाते हैं, जो कि खुद उनके लिए नुकसानदेह है। मानो न्याय की सत्ता आने से पहले एक कठोर बदला सबसे लिया जाना जरूरी हो। कुछ के साथ उनके अन्याय के कारण और कुछ के साथ उनके अज्ञान के कारण।

किसी भी समाज में इससे बड़ा और इससे अनिष्टकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता, यानी कानून को ही लूटपाट का साधन बना देना।

आखिर कानून की ऐसी विकृति के परिणाम क्या हैं? इन सभी को बयान करने के लिए कई पन्ने लग जाएंगे। आइए हम अपने को सबसे महत्वपूर्ण परिणामों तक ही सीमित रखें।

सबसे पहले तो यह सबके दिलोदिमाग से न्याय और अन्याय के फर्क को मिटा देता है।

ऐसे समाज का अस्तित्व ही मुश्किल है जो किसी न किसी हद तक कानून का सम्मान न करता हो। लेकिन कानून को सम्मान दिलाने के लिए जरूरी है कि उनको ऐसा बनाया जाए। जब कानून और नैतिकता एक-दूसरे के विरोध में खड़े हों, तो नागरिक दुविधा की स्थिति में होता है या तो वह नैतिकता का बोध गंवा सकता है या फिर कानून का सम्मान गंवा सकता है। दो बुराईयां, जिनमें एक दूसरे जितनी ही बड़ी है और उनमें से एक का चयन मुश्किल है।

न्याय को बरकरार रखने के लिए प्रकृति के कानून ही कुछ ऐसे हैं कि जनमानस में कानून और न्याय एक ही हैं। हमारी दिमाग में कानूनी बात के ही वैध होने की बात इतनी जबर्दस्त तरीके से चस्पां हो चुकी है कि ऐसे अनेक लोग हैं जो गलती से सारा न्याय कानून के जरिये ही हासिल करते हैं। इससे यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जब कानून आदेश के साथ लूटपाट का अधिकृत बना देता है तो कई लोग ऐसे होते हैं जिनको यह न्यायसंगत और पवित्र सा लगने लगता है। गुलामी, व्यापार पर प्रतिबंध और एकाधिकार का न केवल वे लोग बचाव करने लगते हैं जिनको इससे फायदा होता है, बल्कि उनमें से भी कुछ जो इससे पीड़ित हैं। इस सामाजिक प्रक्रिया पर सवाल उठाइए और आपको सुनने को मिलेगा, 'तुम, एक खतरनाक नवप्रवर्तक (इनोवेटर), एक कल्पनावादी (यूटोपियन), एक सिद्धांतवादी, कानून का मखौल उड़ाने वाले हो, तुम उस नींव को ही खोखला बताना चाहते हो जिस पर यह सामाजिक ढांचा खड़ा है।' अगर आपने नीतिशास्त्र या फिर राजनीतिक अर्थशास्त्र की बात कर दी तो आधिकारिक संगठन, सरकार के पास यह गुहार करते दिखाई देंगे, 'आर्थिक विज्ञान अब न केवल मुक्त व्यापार के दृष्टिकोण (आज़ादी, जायदाद, न्याय) से पढ़ाया जाए, जैसा कि अब तक होता रहा है, बल्कि इसे खासतौर पर फ्रांसीसी उद्योग में मौजूद वास्तविकताओं और कानूनों (जो आज़ादी, जायदाद, न्याय के खिलाफ है) के दृष्टिकोण से भी पढ़ाया जाना चाहिए। और यह भी कि प्रोफेसर अब लागू कानूनों के प्रति पूरा सम्मान व्यक्त करें।'[3]

इसलिए अगर कहीं कोई ऐसा कानून हो जो गुलामी या एकाधिकार का अनुमोदन करता हो, दमन या उत्पीड़न का भी, किसी भी रूप में, तो उसके बारे में किसी को उसका जिक्र भी टालना चाहिए। क्योंकि आप कानून के प्रति सम्मान को कम किए बगैर ऐसा कैसे कर सकते हैं? साथ ही नीतिशास्त्र और राजनीतिक अर्थशास्त्र को भी इसी चश्मे से देखा जाना चाहिए, यानी इस धारणा के साथ कि चूंकि यह कानून है तो यह न्यायपूर्ण ही होगा।

कानून की इस शोकजनक विकृति का एक और परिणाम राजनीतिक जुनून और संघर्ष के आगे घुटने टेक देना है, राजनीति के पूरे क्षेत्र को जरूरत से ज्यादा महत्व देना।

मैं इस प्रमेय (प्रपोजिशन) को हजारों तरीके से साबित कर सकता हूं। मैं अपने आपको उदाहरण देकर केवल उस विषय तक ही सीमित कर दूंगा जो इस वक़्त सभी के दिलोदिमाग पर छाया हुआ हैः सार्वजनिक या सार्वत्रिक मताधिकार (यूनिवर्सल सफरेज)।

रॉस्यू के विचारों के अनुयायी, जो खुद को बहुत ज्यादा उन्नत मानते हैं और जिन्हें मैं वर्तमान से दो सदी पीछे मानता हूं, सार्वजनिक या सार्वत्रिक मताधिकार (इसके केवल वास्तविक अर्थ के लिहाज से) के बारे में चाहे जो सोचें, यह उन पवित्र मतों में से नहीं हैं जिनका परीक्षण या जिन पर संदेह कोई अपराध हो।

सार्वजनिक या सार्वत्रिक मताधिकार के खिलाफ गंभीर किस्म की आपत्तियां की जा सकती हैं। पहली, यह कि सार्वजनिक या सार्वत्रिक शब्द काफी मिथ्या भरा है। क्योंकि मताधिकार को सार्वजनिक या सार्वत्रिक करने के लिए जरूरी है कि यह 3 करोड़ 60 लाख लोगों को दिया जाए। सबसे वृहद चुनाव तंत्र में भी केवल 90 लाख मतदाता ही वैध हैं। इस तरह चार में से तीन लोग इस सूची से बाहर हो जाते हैं और उन्हें यह चौथा व्यक्ति बाहर करता है। आखिर इस तरह बाहर रखने का आधार क्या है? असमर्थता या अयोग्य होने के आधार पर। ऐसे में सार्वजनिक या सार्वत्रिक मताधिकार का मतलब यह हुआ कि समर्थ लोगों को सार्वजनिक या सार्वत्रिक मताधिकार। ऐसे में तथ्य पर आधारित यह सवाल रह जाता हैः समर्थ लोग कौन हैं? क्या केवल उम्र, लिंग और आपराधिक रिकार्ड ही वह लक्षण हैं जिनके आधार पर समर्थता का निर्धारण किया जा सकता है?

अगर हम इस सवाल को और नजदीक से देखें तो हम तत्काल इस नतीजे पर पहुंच जाएंगे कि क्यों मतदान का अधिकार समर्थता के अनुमान पर आधारित होता है। सबसे वृहद चुनावी तंत्र केवल समर्थता के लक्षणों के मूल्यांकन की क्षमता के लिहाज से ही सीमित चुनावी तंत्र से अलग होता है। तो यहां फर्क डिग्री का है सिद्धांत का नहीं।

कारण यह है कि मतदाता अपने मताधिकार का प्रयोग केवल अपने लिए नहीं बल्कि सबके लिए करता है।

अगर ग्रीक और रोमन अंदाज में आरोप मढ़ने वाले हमारे रिपब्लिकन की बात मानें कि मताधिकार हर व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है तो वयस्क पुरुषों द्वारा महिलाओं और बच्चों को मताधिकार के प्रयोग से रोकना अन्यायपूर्ण ही होगा। उन्हें क्यों रोका जाता है? क्योंकि यह मान लिया जाता है कि वे अक्षम या असमर्थ हैं। और अक्षमता या असमर्थता क्यों बाहर ही रखे जाने का कारण है? क्योंकि मतदान के परिणाम मतदाता को अकेले नहीं झेलना होते

हैं, क्योंकि हर मत पूरे समाज का प्रतिनिधित्व करता है और उसे प्रभावित भी करता है, क्योंकि समाज को यह हक है कि उसे यह गारंटी मिले कि इस प्रक्रिया पर ही उसका अस्तित्व और भलाई निर्भर है।

मैं जानता हूं कि जवाब क्या हो सकता है। मैं यह भी जानता हूं कि इसके बाद इसका प्रत्युत्तर क्या होगा। इस विषय पर बड़ा विवाद खड़ा करने की यह जगह नहीं है। मैं तो इस बात पर ध्यान दिलाना चाहता हूं कि यही विवाद (साथ ही तमाम राजनीतिक सवाल) हैं जो देशों को उत्तेजित करते हैं, जगाते हैं और हिलाकर रख देते हैं, अपना सारा महत्व ही खो देंगे अगर कानून हमेशा वैसा ही रहे जैसा इसे होना चाहिए।

हकीकत में अगर कानून सभी लोगों, आज़ादी और जायदाद के अधिकारों की रक्षा सुनिश्चित करने तक ही खुद को सीमित कर ले, यह केवल एक ऐसा ही संगठन बन जाए जो हर व्यक्ति को आत्मरक्षा का विधिसम्मत अधिकार दे, बाधाओं पर अंकुश लगाए और दमन व लूटपाट की तमाम गतिविधियों का मुखर विरोध करे, तो क्या यह संभव है कि लोग अपने मताधिकार का दायरा और ज्यादा व्यापक या कम करने की बात करें? तो क्या संभव है कि ऐसे विवाद से लोगों के भले और सुखशांति को खतरा पैदा हो जाएगा? क्या यह संभव है कि उपेक्षित वर्ग में अपनी बारी के इंतजार का धैर्य नहीं होगा? क्या यह संभव है कि अब तक जिस वर्ग का पक्ष लिया जाता था वह उनके इस विशेषधिकार से ईर्ष्या करेगा? और क्या यह भी स्पष्ट नहीं है, सबके एक समान और सामान्य हित, लोगों को मत देने का मिला नया अधिकार बाकी की आबादी के लिए असहजता का विषय नहीं रहेगा?

लेकिन एक बार यह विनाशकारी सिद्धांत अमल में आने दीजिए कि संस्थान, नियमन, संरक्षण या प्रोत्साहन के नाम पर कानून दूसरों को देने के लिए किसी से ले सकता है। सभी वर्गों की कमाई का हिस्सा किसी वर्ग को देने के लिए ले सकता है। फिर भले ही वह वर्ग किसानों, उत्पादकों, व्यापारियों का या जहाज मालिकों का हो, तो तय मानिए कि ऐसे में ऐसा कोई वर्ग नहीं होगा जो एक अच्छी वजह के कारण कानून बनाने में भागीदारी की मांग करेगा, मताधिकार की मांग करेगा और खुद को उसके काबिल मानने की भी मांग करेगा। इसे हासिल करने के लिए समाज को आंदोलित करके हिला देने से भी वह पीछे नहीं हटेगा। यहां तक कि भिखारी और आवारा लोग भी यह साबित कर देंगे कि उनके मतदान के अधिकार को चुनौती नहीं दी जा सकती। वे यह कहेंगे, 'हम कभी भी शराब, तंबाखू या नमक बिना कर दिए नहीं खरीदते। इस कर का कुछ हिस्सा कानून द्वारा अनुदान और आर्थिक मदद के तौर पर दिया जाता है, हमसे अमीर लोगों को। अन्य लोग कानून की मदद लेकर ब्रेड, मांस, लोहे

और कपड़े की कीमतें बढ़वा लेते हैं। चूंकि सभी लोग अपने फायदे के लिए कानून का अनुचित लाभ उठा रहे हैं तो हम भी ऐसा करना चाहते हैं।'

वे कहेंगे, 'हम चाहते हैं कि हमें सरकारी राहत पाने का अधिकार हो। जोकि लूट में गरीब आदमी का हिस्सा होगा। ऐसा करने के लिए हमें मतदाता और लेजिस्लेटर जरूर बनना होगा। ताकि हम भी संगठित होकर अपने वर्ग की मदद कर सकें, जिस तरह से कीमतों पर नियंत्रण के साथ तुमने अपने वर्ग की की है। हमें ये मत कहना कि तुम हमारे लिए ऐसा करोगे, या हमें यह अधिकार दान में दे दोगे, जैसा कि एम. मिमरव्ल [पियरे ऑगस्त रेमी मिमेरेल डी रोबेस (1786-1872), टेसटाइल उत्पादक और राजनीतिज्ञ। अपनी संरक्षणवादी गतिविधियों के बाद, जो 1848-49 के दरमियान बास्तियात की नाराजगी का कारण बनी थीं, उन्हें नेपोलियन तृतीय ने सलाहकार परिषद में नियुक्त किया था और उत्पादकों के आयोग में भी। 1849 में प्रतिनिधि बने मिमेरेल को नेपोलियन ने 1852 में सीनेटर नियुत किया थाट्रांसलेटर।] प्रस्तावित करना चाहते हैं। छह लाख फ्रैंक, एक हड्डी के टुकड़े की तरह ताकि हम चुप रहें। हमारी और भी मांगे हैं और हम अपने लिए खुद काम करना चाहते हैं, जैसे कि अन्य वर्ग अब तक खुद के लिए करते आए हैं।'

ऐसी बहस का कोई भला या जवाब दे सकता है? हां यह सच है कि जब तक यह माना जाएगा कि कानून को उसके मूल मार्ग से विचलित किया जा सकता है। जायदाद के अधिकारों की रक्षा की बजाय यह उनका उल्लंघन कर सकता है, हर वर्ग कानून बनाना चाहेगा, भले ही फिर ऐसा लूट से बचने के लिए हो या सब मिलकर अपने फायदे के लिए लूटने की खातिर हो। राजनीतिक सवाल तो हमेशा विवादास्पद, हावी और दिलचस्प रहेंगे, एक शब्द में कहा जाए तो लोगों का विधानमंडल (लेजिस्लेचर) के दरवाजे खटखटाना जारी रहेगा। उसके अंदर का भी माहौल कम कड़वाहट भरा नहीं होगा। इस बात से सहमति के लिए जरूरी नहीं कि आप फ्रांस या इंग्लैंड की संसदों के भीतर झांककर देखें, इसके लिए तो वह विषय जान लेना ही काफी हैं जिन पर बहस हो रही है।

क्या यह साबित करने की जरूरत है कि कानून का यह लांछनास्पद दुराग्रह, घृणा, असंतोष और यहां तक कि सामाजिक अव्यवस्था का भी कारण बन जाता है? अमेरिका की तरफ देखिए। दुनिया में कोई ऐसा देश नहीं है जो कानून को उसकी वास्तविक भूमिका के इतना करीब रखता होगा, जिसका मतलब होता है हर एक की आज़ादी और जायदाद की सुरक्षा। स्वाभाविक तौर पर कोई और ऐसा देश नहीं है जहां पर सामाजिक व्यवस्था इतनी पुख्ता नींव पर रखी हुई हो। फिर भी अमेरिका में भी दो सवाल, केवल दो सवाल ऐसे हैं जो उसकी स्थापना के वक्त से उसकी राजनीतिक व्यवस्था में भूचाल ला चुके हैं। और ये दो सवाल

कौनसे हैं? गुलामी और शुल्क (टैरिफ), ही वो दो ऐसे सवाल हैं जिनमें इस गणतंत्र की मूलभावना के विपरीत कानून ने एक विकृत रूप धारण कर लिया है।

कानून द्वारा स्वीकृत गुलामी एक व्यक्ति के अधिकारों का उल्लंघन है। संरक्षी प्रशुल्क (प्रोटेटिव टैरिफ), जायदाद के अधिकार का कानूनी उल्लंघन है। और यह बात जाहिर तौर पर असाधारण ही है कि पुरानी दुनिया (अमेरिकी महाद्वीप के इतर दुनिया) से विरासत में मिला यह दोगुना कानूनी संकट, ही शायद इकलौता ऐसा कारण रहेगा जो शायद संघ को विघटित कर देगा। किसी भी समाज में कानून के अन्याय का साधन बनने से ज्यादा गंभीर स्थिति की कल्पना नहीं की जा सकती। और अगर यह हकीकत अमेरिका में ऐसी भयावह परिस्थिति को जन्म देती है, जहां यह अपवादस्वरुप ही देखी जाती है, तो इसका परिणाम यूरोप में क्या होगा, जहां यह एक सिद्धांत एक समूचा तंत्र है?

एम. डी मोंतालमबर्त [*चार्ल्स, काउंट डी मोंतालमबर्त (1810-1870)। एक विधिवेत्ता (पब्लीसिस्ट) और उदार कैथोलिकवाद के प्रवक्ता।*] ने एम. कार्लियर [*पियरे कार्लियर (1799-1858)। फ्रांसीसी राजनीतिज्ञ और पुलिस प्रशासक। 1830 और 1848 की क्रांतियों के दौरान पेरिस पुलिस के प्रमुख। उन्हें 1849 में 'प्रिफेट ऑफ पुलिस' घोषित किया गया था।*] के प्रसिद्ध उद्घोषणा (प्रोक्लेमेशन) के विचारों को अपनाते हुए कहा थाः 'हमें समाजवाद के खिलाफ जंग लड़ना होगी।' और हमें यह मानकर ही चलना चाहिए कि समाजवाद से उनका आशय लूटपाट से था, चार्ल्स डूपिन की परिभाषा के आधार पर।

लेकिन उनका मतलब किस किस्म की लूटपाट से था? क्योंकि ये दो तरह की होती हैः एक तो गैरकानूनी और दूसरी कानूनी।

जहां तक गैरकानूनी लूट जैसे चोरी, धोखाधड़ी की बात है, यह परिभाषित है और दंड संहिता में इसके लिए सजा का प्रावधान भी है। मुझे नहीं लगता कि हम इसे सच्चाई के आयने में परखते हुए समाजवाद का नाम दे सकते हैं। यह वो बात नहीं है जो एक तय तरीके से समाज की नींव को ही तहस-नहस करती है। साथ ही इस तरह की लूट के खिलाफ जंग के लिए एम.डी मोंतालमबर्त या एम. कार्लियर के संकेतों की प्रतीक्षा नहीं की गई है। यह तो दुनिया के अस्तित्व के साथ ही शुरू हो गई थी, फ्रांस ने ही फरवरी की क्रांति से काफी पहले इसके लिए मौका मुहैया करा दिया था, समाजवाद के अस्तित्व में आने से काफी पहले। अदालतों, पुलिस, जेलों, काल-कोठरियों और फांसी के तख्त के जरिये। यह कानून खुद ही है जो यह लड़ाई लड़ता चला आ रहा है और इससे ज्यादा मेरी नजर में और बेहतर क्या होगा कि कानून लूटपाट के खिलाफ यह रूख हमेशा बनाए रखे।

लेकिन मामला यह नहीं है। कानून कभी-कभार लूट का पक्ष भी ले लेता है। कई बार यह अपने हाथ से ही लूट लेता है, लाभार्थी को शर्म, खतरे और अंतकरण के परहेजों से बचाने के लिए। कई बात तो यह कानून व्यवस्था के तमाम साधन-संसाधन जैसे अदालत, पुलिस, रक्षाबल और जेल, लूटेरों की ही सेवा में लगा देती है और लूट के शिकार को विरोध करने पर जेल की सैर तक करा देती है। एक शब्द में कहें तो यह कानूनी लूट है और इसमें कोई शक नहीं है कि एम. डी मोंतालमबर्त इसी की बात कर रहे हैं।

इस तरह की लूट का दाग किसी देश पर अपवादस्वरुप ही लग सकता है। ऐसे में निहित स्वार्थों की उपेक्षा करते हुए बिना किसी आलोचना या विलाप के इसे जल्द से जल्द उखाड़ फेंकना ही सबसे अच्छा तरीका हो सकता है। आखिर इनकी पहचान कैसे हो? बहुत आसान है। हमें केवल यह देखना है कि क्या कानून किसी से उसकी कोई चीज लेकर किसी ऐसे दूसरे को दे देता है जिसकी वह नहीं है? हमें यह जरूर देखना चाहिए कि क्या कानून एक नागरिक के हित का काम करते हुए दूसरे का अहित कर रहा है? एक ऐसा काम जिसे अगर कोई नागरिक करता तो वह दंडनीय अपराध की श्रेणी में आ जाता। ऐसे कानून को बिना देरी खत्म कर दें। यह न केवल अपने आपमें पक्षपातपूर्ण है, बल्कि यह और पक्षपात को बढ़ावा भी देगा क्योंकि यह प्रतिशोध को न्यौता देगा। अगर आपने ध्यान नहीं रखा तो जो अपवाद के तौर पर हुआ था वह आम हो जाएगा ताकि अपने आपको तेजी से बढ़ाते हुए यह एक वास्तविक कार्यप्रणाली ही बन जाए। इसमें कोई शक नहीं है कि वह व्यक्ति जिसे इससे फायदा होगा, इस बात का खूब ढोल पीटेगा कि यह तो उसका उसका हासिल किया हुआ हक है। वह कहेगा कि सरकार उसके उद्योग के संरक्षण और प्रोत्साहन के लिए बाध्य है। वह यह भी कहेगा कि सरकार द्वारा उसे अमीर बनाना अच्छी बात है क्योंकि वह ज्यादा खर्च करेगा जिससे गरीब श्रमिकों को मदद मिलेगी। सावधान होकर इस तर्क को अनसुना कर देना चाहिए, क्योंकि इन तर्कों को ही व्यवस्थित तरीके से विस्तारित करके इसकी आड़ में कानूनी लूटपाट को एक तंत्र में बदलने का काम किया जाएगा।

वास्तविकता में यही हुआ है। हमारे युग की प्रचलित भ्रांति यह है कि हर वर्ग को एक-दूसरे की कीमत पर अमीर बनाना संभव है। यानी लूट को व्यवस्थित करने के नाम पर उसे सार्वभौमिक बनाना। कानूनी लूट कई तरीके से की जा सकती है, इसे करने के लिए अनगिनत योजनाएं हैं: प्रशुल्क (टैरिफ्स), संरक्षण, बोनस, अनुदान, प्रोत्साहन, प्रोग्रेसिव इन्कम टैक्स, मुफ्त शिक्षा, रोजगार का अधिकार, लाभ का अधिकार, पारिश्रमिक का अधिकार, राहत पाने का अधिकार, उत्पादन के औजार पाने का अधिकार, ब्याज मुक्त कर्ज आदि, आदि। और अगर एक

समानता जिसके आधार पर इन सभी योजनाओं का निचोड़ निकाला जा सकता है तो वो है कानूनी लूट, जो समाजवाद के नाम के पीछे छिपी हुई है।

अब चूंकि समाजवाद एक मत बन चुका है तो इससे आप कैसे लड़ेंगे, मत की ही लड़ाई के जरिये न? आप इस मत को झूठा, बेहूदा और निकृष्ट मानते हैं तो इसे खारिज कर दीजिए। मत जितना ज्यादा झूठा, बेहूदा और निकृष्ट होगा आपके लिए उसे खारिज करना उतना ही आसान होगा। सबसे मुख्य बात कि अगर आप ताकतवर बनना चाहते हैं तो अपने संविधान से उसमें घुसपैठ कर चुके तमाम समाजवाद को पूरी तरह से उखाड़ फेंके। यह काम किसी भी लिहाज से छोटा नहीं है।

एम. डी मोंतालमबर्त को निर्दयता के साथ ताकत इस्तेमाल करके ऐसा करने के कारण आलोचना का शिकार होना पड़ा। यह ऐसा आरोप है जिससे उन्हें मुक्त कर दिया जाना चाहिए, क्योंकि वह कह चुके हैं, 'हमें समाजवाद के खिलाफ एक ऐसी जंग लड़ना चाहिए जो विधिसम्मत हो और जिसमें गरिमा और न्याय भी हो।'

लेकिन भला यह कैसे संभव है कि एम.डी मोंतालमबर्त यह नहीं सोच सके कि वे खुद को एक बेहद दोषपूर्ण चक्र में फंसा रहे हैं? आप समाजवाद के विरोध के लिए कानून का सहारा लेना चाह रहे हैं? लेकिन समाजवाद तो कानून की ही देन है। यह गैरकानूनी लूट के लिए नहीं बल्कि विधिसम्मत लूट के लिए है। समाजवाद अन्य एकाधिकारों की तरह कानून का ही इस्तेमाल करना चाहता है। एक बार कानून इसके पक्ष में आ जाए तो फिर आप कैसे कानून द्वारा इसके विरोध की अपेक्षा कर सकते हैं? आप कैसे इस पर अपने पंचाटों, अपनी पुलिस और अपनी जेलों से हमला बोल सकते हैं?

तो आप क्या करते हैं? आप कानून बनाने में समाजवाद की भागीदारी को रोकना चाहते हैं। आप समाजवादियों का विधानमंडल (लेजिस्लेचर) में प्रवेश रोकना चाहते हैं। मैं यह कहने का जोखिम मोल ले सकता हूं कि आप कामयाब नहीं होंगे। जबकि लूटपाट के सिद्धांत पर आधारित विधिसम्मत कानून मंजूर होते रहेंगे। आपका विचार बहुत अन्यायपूर्ण है, बहुत बेहूदा।

इस कानूनन लूटपाट की समस्या का हमेशा-हमेशा के लिए हल निकालना जरूरी हो गया है। यहां केवल तीन हल उपलब्ध हैं-

यह कि कुछ लोग ज्यादा लोगों को लूटते हैं।

यह कि हर कोई हर दूसरे को लूटता है।

यह कि कोई भी किसी को भी नहीं लूटता है।

आंशिक लूट, सार्वभौमिक लूट, लूट की अनुपस्थितिः एक का तो चयन करना ही पड़ेगा। कानून इन तीनों में से केवल एक ही रास्ता चुन सकता है।

आंशिक लूट एक ऐसा तंत्र है जो तब तक बना रहेगा जब तक कि मतदाता पक्षपाती हैं। एक ऐसा तंत्र जिसमें समाजवाद के हमले से बचने के लिए कुछ लोग वापसी चाहते हैं।

सार्वभौमिक लूट वह तंत्र है जिसमें मताधिकार के सार्वत्रीकरण के कारण हम पर खतरा बढ़ गया है। जनता जनार्दन ने भी उसी सिद्धांत पर कानून बनाने का तरीका जान लिया है जिस पर उनके पहले के कानून निर्माता चलते रहे हैं।

लूट की अनुपस्थिति दरअसल न्याय, शांति, व्यवस्था, स्थायित्व, सौहार्द्र और सूझबूझ का सिद्धांत है। मैं अपनी पूरी ताकत (अफसोस, जो अपर्याप्त है) से, फेंफड़ों की पूरी ताकत झोंककर अंतिम सांस तक इसका समर्थन करना चाहूंगा। [*बास्तियात यहां दरअसल उस फेंफड़े की बीमारी का भी संकेत दे रहे हैं जो अंततः उनकी मौत का कारण बनी।*]

और ईमानदारी की बात की जाए तो या कानून से किसी और बात की अपेक्षा की जा सकती है? क्या कानून, एक अनिवार्य शक्ति के तौर पर हर किसी के अधिकारों के संरक्षण के लिए और बेहतर तरीके से लागू किया जा सकता है? मैं जानना चाहता हूं कि क्या कानून को बगैर छेड़छाड़ इस परिधि से बाहर निकालना संभव है और बिना इंसानी हकों के खिलाफ ताकत के इस्तेमाल के। और चूंकि यह सबसे विनाशकारी और सबसे तर्कहीन सामाजिक अव्यवस्था है, हमें यह साफ तौर पर यह जान लेना चाहिए कि जिस हल की बात हम लोग कर रहे हैं वो इन साधारण से शब्दों में छिपा हुआ हैः कानून संगठित न्याय है।

अब कानून के जरिये न्याय करने का मतलब, किसी भी इंसानी गतिविधि श्रम, धर्मार्थ, कृषि, कारोबार, उद्योग, शिक्षा, ललित कला या धर्म में ताकत का प्रदर्शन नहीं है। क्योंकि इन गौण संस्थानों से अंततः मुख्य संस्थान को क्षति पहुंचेगी। आखिर कैसे उम्मीद की जा सकती है कि किसी व्यक्ति के हक छीनकर भी न्याय किया जा सकता है और इस तरह उसके मूल उद्देश्य के खिलाफ व्यवहार किया जा सकता है?

अब मैं यहां आज के सबसे लोकप्रिय पूर्वाग्रह का सामना करने जा रहा हूं। लोग न केवल न्याय के सही होने बल्कि परोपकारी होने की भी उम्मीद रखते हैं। वे न्याय से केवल इतनी उम्मीद नहीं करते कि हर नागरिक को अपने शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक विकास का मौका मिले। वे चाहते हैं कि यह पूरे देश में कल्याण, शिक्षा और नैतिकता के प्रसार का भी काम करे। यही समाजवाद का प्रलोभनकारी पक्ष है।

लेकिन, मैं दोहराता हूं, कानून के ये दो प्रयोजन एकदूसरे का प्रतिवाद करते हैं। हमें इनमें से एक को चुनना ही होगा। एक नागरिक एक ही वक्त आजाद और गुलाम नहीं हो सकता।

एम.डी लामार्टिन ने एक दिन मुझको लिखा, 'आपका मत मेरे कार्यक्रम का केवल आधा हिस्सा है, आप स्वतंत्रता पर आकर ठहर गए, मैं अपनी बिरादरी तक जाता हूं।' मैंने उन्हें जवाब दिया, 'आपके कार्यक्रम का आधा हिस्सा पहले आधे हिस्से को खत्म कर देगा।' और हकीकत में मेरे लिए शब्द 'भाईचारे' को 'स्वैच्छिक' से अलग करके देख पाना नामुमकिन है। मुझे नहीं लगता कि आज़ादी के कानूनन तबाह और न्याय के कानूनन पैरों तले कुचले जाने के बगैर भाईचारे को कानूनन लागू किया जा सकता है।

विधिसम्मत लूट की दो जड़ें हैं: एक तो हमने अभी देखी इंसानी स्वार्थ में, दूसरी है झूठे परोपकार में।

और आगे बढ़ने से पहले मुझे लगता है कि मुझे फिर एक बार इस बात का खुलासा करना चाहिए कि आखिर शब्द 'लूट' [*मूल फ्रांसीसी शब्द ला स्पोलिएशन की जगह अंग्रेजी शब्द 'स्पोलिएशन' की जगह 'प्लंडर' का इस्तेमाल, देखें छठे अध्याय के पेज 152 इंफ्रा का फूटनोट* /] से मेरा तात्पर्य क्या है।

मैं इसे आमतौर पर किया जाने वाला अस्पष्ट, अनियत, अनुमानित या प्रतीकात्मक इस्तेमाल नहीं कह रहा हूं, बल्कि मैं इसका इस्तेमाल इसे इसके सटीक और वैज्ञानिक अर्थ में ही कर रहा हूं, जैसे कि जायदाद की सोच के विरोध के वक्त किया था। जब कोई जायदाद मालिक की इजाजत के बगैर स्थानांतरित की जाती है, बिना कोई मुआवजा दिए, बल प्रयोग से या धोखाधड़ी से, ऐसे व्यक्ति से जो इसका मालिक हो या जिसने इसे हासिल किया हो, मैं कहता हूं कि जायदाद के अधिकारों का उल्लंघन हुआ है और लूट की गई है। मैं कहता हूं कि कानून दरअसल इसी बात को हर वक्त हर कहीं दबाने के लिए ही बना है। अगर कानून खुद वह काम करता है जिस पर उसे काबू करना चाहिए था तो मैं इसे अब भी लूट ही कहूंगा और जहां तक समाज की बात है तो पहले से भी बड़ी लूट। इस मामले में लूट की प्रक्रिया से लूट करने वाले कानून, कानून निर्माता और खुद समाज को कोई फायदा नहीं हो रहा है, और यही वह बात है जो राजनीतिक खतरा होता है।

अफसोस की बात है कि शब्द 'लूट' का भावार्थ काफी आपत्तिजनक है। मैंने दूसरा शब्द खोजने का बहुत नाकाम प्रयास किया, क्योंकि मैं नहीं चाहता खासतौर पर ऐसे वक़्त में जबकि असहमति के इस माहौल में यह शब्द और विवाद खड़ा कर सकता है। इसीलिए लोग भरोसा करें या न करें, मैं घोष्णा करता हूं कि मेरा उद्देश्य किसी के इरादों या नैतिकता का मखौल उड़ाना नहीं है। मैं तो एक ऐसे विचार पर हमला करना चाहता हूं जो मेरी राय में झूठा है। एक ऐसा तंत्र जो अन्यायपूर्ण है। फिर भी बिना किसी उद्देश्य के इतना अन्यायपूर्ण कि हममें से हर एक को बिना मांगे इसका फायदा मिलता है और बिना मांगे इसकी

परेशानियां भी। संरक्षणवाद, समाजवाद और यहां तक कि साम्यवाद के समर्थकों की निष्ठा पर सवाल उठाने के लिए थोड़े पूर्वाग्रह या फिर भय से रूबरू तो होना ही पड़ेगा। जो एक ही पौधे के विकास के तीन चरण हैं। हम इतना ही कह सकते हैं कि पक्षपात[4] के कारण लूट संरक्षणवाद में ज्यादा मुखरता से दिखाई दे जाती है और साम्यवाद में इसकी सार्वभौमिकता के कारण। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि समाजवाद इन तीनों में सबसे अस्पष्ट, सबसे अनिर्णायक और परिणामस्वरुप सबसे ज्यादा निष्ठा का पात्र है।

खैर मामला जो भी हो यह कहना कि कानूनी लूट की एक जड़ झूठे परोपकार में है, इस बहस से प्रयोजन के सवाल को ही हटा देना है।

यह बात समझ में आ जाने के बाद आइए अब इस लोकप्रिय आकांक्षा का परीक्षण करें, जो सार्वजनिक लूट से सार्वजनिक भलाई करना चाहती है। आइए देखें यह कितनी मूल्यवान है जब यह आती है और जहां यह जाती है।

समाजवादी हमसे पूछते हैं, 'चूंकि कानून न्याय को सुसंगत बनाता है, तो यह क्यों नहीं श्रम, शिक्षा और धर्म को सुसंगत बनाने के लिए भी इस्तेमाल किया जाए?'

क्यों? क्योंकि न्याय को विसंगत किए बगैर यह श्रम, शिक्षा और धर्म को सुसंगत नहीं बना सकता।

यह मत भूलिए कि कानून एक बल है और यह भी कि परिणामस्वरुप कानून का दायरा विधिसम्मत तरीके से बल के विधिसम्मत दायरे से बाहर नहीं जा सकता।

जब कानून और बल किसी व्यक्ति को न्याय की परिधि में लाते हैं तो वे उस पर कुछ लादते नहीं हैं बल्कि यह तो महज एक प्रतिवाद होता है। वे उस पर केवल दूसरों को नुकसान पहुंचाने से बचने की जिम्मेदारी डालते हैं। वे उसके निजी व्यक्तित्व, उसकी आज़ादी या उसकी संपत्ति में हस्तक्षेप नहीं करते। वे तो महज उसके व्यक्तित्व, आज़ादी और उसकी संपत्ति को संरक्षण प्रदान करते हैं। वे रक्षक की मुद्रा में होते हैं, सबके समान अधिकारों की रक्षा के लिए। वो एक ऐसा मिशन पूरा करते हैं जिसकी हानिहीनता सर्वविदित है। जिसकी उपयोगिता सुस्पष्ट है और जिसकी वैधता को लेकर कोई विरोध नहीं है।

यह बात इतनी ज्यादा खरी है कि मेरे दोस्तों ने मुझसे कहा, यह कहना कि कानून का उद्देश्य न्याय कायम रखना है एक ऐसी बात कहना है जो पूरी तरह से सही नहीं है। इसकी बजाय कहना यह चाहिएः कानून का उद्देश्य अन्याय कायम होने से बचाना है। हकीकत में, न्याय नहीं अन्याय का अपना अस्तित्व होता है। पहला (न्याय) तो दूसरे (अन्याय) की गैरमौजदूगी में होता है।

लेकिन जब न्याय, इसके अनिवार्य एजेंट बल के हस्तक्षेप से श्रम का कोई तंत्र, शिक्षा का कोई तरीका या विषय, कोई पंथ या कोई धर्म लादती है तो यह हस्तक्षेप नकारात्मक नहीं सकारात्मक होता है। यह कानून निर्माता की इच्छा को अपनी इच्छा से स्थानापन्न कर देता है, कानून निर्माताओं की पहल को अपनी पहल से। लोगों को अब एक साथ बैठकर सलाह-मशविरा करने, तुलना करने या भविष्य को लेकर सोचने की जरूरत नहीं रहती, कानून खुद उनके लिए यह सब कर देता है। बुद्धिमत्ता एक बेकार का मददगार हो जाता है, वे इंसान नहीं रहते, वे अपना व्यक्तित्व गंवा देते हैं और आज़ादी और संपत्ति भी।

श्रम के बलप्रयोग से तैयार एक ऐसे तंत्र की कल्पना कीजिए, जो स्वतंत्रता का उल्लंघन न हो, बलप्रयोग से संपत्ति का ऐसा स्थानांतरण जो संपत्ति के अधिकार का उल्लंघन न हो। अगर आप ऐसा नहीं कर सकते तो आपको यह बात मानना ही होगी कि कानून श्रम और उद्योग को सुव्यवस्थित न्याय अन्याय किए बगैर नहीं दे सकता।

अपने अध्ययन की गहराईयों से निकलकर जब कोई आर्थिक सिद्धांतक समाज की ओर देखता है, तो वह उसमें मौजूद असमानता को देखकर हैरान हो जाता है। वह अनगिनत बंधुओं की दिक्कतों को देखकर कराहता है, ऐसी परेशानियां जो विलासिता और एश्वर्य के कारण तो और अधिक दुखद दिखने लगती है।

उसे शायद खुद से ही यह सवाल पूछना चाहिए कि कहीं इस सामाजिक स्थिति के लिए लूट तो जिम्मेदार नहीं। वह लूट जो विभिन्न युद्धों में विजय और कानून के हस्तक्षेप के कारण ताजा वक़्त में लूट के कारण तो नहीं। उसे खुद से सवाल पूछना चाहिए कि इंसान की बेहतरी और आत्मनिर्भर होने की मूलभूत मनोवृत्ति के रहते या कानून की महज मौजूदगी ही उसकी प्रगति को गति देने के लिए काफी नहीं है। एक निजी जिम्मेदारी से यथासंभव समानता, जो उसे भगवान से पाप और पुण्य की समझ के साथ सौंपी गई है।

लेकिन राजनीतिक विचारक तो इतना सोचने की भी जहमत नहीं उठाते। उसके विचार तो बस योजनाओं, व्यवस्थाओं, कानूनी और फर्जी संगठन बनाने की ओर केंद्रित रहते हैं। वह उन्हीं बातों के स्थायीकरण और भावुकता को प्रोत्साहन देने लगता है जो दरअसल इस समस्या का मूल हैं।

क्योंकि न्याय (जो हमने देखा कि महज एक प्रतिवाद है) के सिवाय कोई ऐसी विधिसम्मत व्यवस्थाएं हैं, जिनमें लूट का सिद्धांत न हो?

आप कहते हैं: 'ऐसे लोग भी हैं जिनके पास जरा सा भी धन नहीं है' और आप कानून से गुहार लगाते हैं। लेकिन कानून कोई ऐसा स्तन नहीं जो समाज के अलावा इतर स्रोतों से आपके लिए दूध जुटा सके। सरकारी खजाने में किसी नागरिक या वर्ग के फायदे के लिए धन

बिना किसी दूसरे नागरिक या वर्ग को उसे जमा करने के लिए बलप्रयोग नहीं जुटाया जा सकता। अगर हर कोई अपने योगदान के हिसाब से ही फल पाता है तो आपका कानून बेकार नहीं है, लेकिन यह उन लोगों के लिए कुछ नहीं करता जिनके पास धन नहीं है, यह असमानता मिटाने के लिए कुछ नहीं करता। यह समानता का साधन बस इस लिहाज से हो सकता है कि यह एक से धन लेकर दूसरे को दे देता है और फिर यह लूट का साधन बन जाता है। आइए अब इसे इन बातों में देखें संरक्षी प्रशुल्क (प्रोटेटिव टेरिफ), अनुदान, लाभ का अधिकार, रोजगार का अधिकार, सार्वजनिक लाभ का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, प्रोग्रेसिव करारोपण, ब्याजरहित उधार और लोक निर्माण। आप हमेशा ही पाएंगे कि यह कानूनी लूट और सुसंगठित अन्याय पर आधारित हैं।

आप कहते हैं: 'ऐसे लोग हैं जो अशिक्षित हैं,' और आप कानून की शरण में चले जाते हैं। लेकिन कानून कोई टॉर्च नहीं है जो दूर से लेकर पास तक की चीज को रोशन कर दे। यह एक समाज तक सीमित होता है, जहां कुछ लोग के पास ज्ञान होता है और बाकी के पास नहीं। कुछ ऐसे नागरिक होते हैं जिनको शिक्षा की दरकार होती है और कुछ ऐसे होते हैं जो पढ़ाना चाहते हैं। यह दोनों में से एक ही काम कर सकता है: या तो इस तरह के आदान-प्रदान को पूरी तरह से मुक्त कर दें, यानी ऐसी जरूरत को पूरा करने का काम स्वेच्छा पर छोड़ दे या फिर कुछ लोगों के धन का इस्तेमाल करके शिक्षकों के वेतन का भुगतान करे और इस काम से शिक्षा पाने वालों से इसके एवज में कुछ भी न ले। लेकिन दूसरे मामले में आप स्वतंत्रता और संपत्ति के अधिकार का उल्लंघन किए बगैर नहीं रह सकते जो कानूनी लूट है।

आप कहते हैं: 'ऐसे लोग हैं जिनमें नैतिकता और धार्मिकता का अभाव है' और आप कानून का मुंह ताकने लग जाते हैं। लेकिन कानून का मतलब बल होता है और क्या मुझे आपका ध्यान इस बात की ओर दिलाने की जरूरत है कि ऐसे मामलों में बल प्रयोग कितना बेवकूफी भरा और हिंसक होगा?

देखा जा सकता है कि समाजवादी, चाहे फिर वो कितने ही आत्मसंतुष्ट क्यों न हों, इस बात से अनजान नहीं हैं कि उनकी योजनाएं और प्रयास कितनी बड़ी दानवी लूट का पोषण कर रहे हैं। लेकिन वह क्या करते हैं? वे लूट को तमाम, खुद की भी आंखों से छिपाने के लिए उस पर चतुराई के साथ भाईचारा, एकता, संघ या संगठन जैसा लुभावना आवरण डाल देते हैं। और चूंकि हम कानून से ज्यादा की अपेक्षा नहीं करते, क्योंकि हमें तो बस न्याय से मतलब होता है, समाजवादी समझ लेते हैं कि हम भाईचारे, एकता, संघों और संगठनों के खिलाफ हैं और वह हमारे मुंह पर व्यक्तिवादी का तमगा जड़ देते हैं।

हालांकि उन्हें यह जानना चाहिए कि हम प्राकृतिक नहीं थोपे गए संगठनों को खारिज कर रहे हैं।

यह खुला संबंध नहीं है, बल्कि संबंधों का वह फरेब है जो समाजवादी हम पर थोपना चाहते हैं।

यह उत्स्फूर्त भाईचारा नहीं है, बल्कि कानूनन लादा गया भाईचारा है।

यह दैवी नहीं बल्कि कृत्रिम एकता है, जो और कुछ नहीं जिम्मेदारियों का अन्यायभरा विस्थापन है।

समाजवाद, अपने मूल स्रोत वाली राजनीतिक विचारधारा की तरह, सरकार और समाज के बीच भ्रम पैदा कर लेता है। यही वजह है कि जब कभी भी हम सरकार द्वारा की गई कोई बात नहीं करना चाहते, समाजवादी इस निष्कर्ष तक पहुंच जाते हैं कि हम मूलतः वह काम ही नहीं करना चाहते। हम सब सरकारी शिक्षा तंत्र का विरोध करते हैं, इसका मतलब है कि हम सभी के लिए शिक्षा के ही विरोधी हैं। हम सरकार द्वारा थोपे गए धर्म का विरोध करते हैं, मतलब हम हर धर्म के विरोधी हैं। हम सरकार द्वारा थोपी गई असमानता का विरोध करते हैं तो हम असमानता विरोधी हैं, आदि, आदि। यह तो कुछ ऐसा है कि हमारा सरकार द्वारा फसल उगाए जाने के विरोध का मतलब है कि हम चाहते हैं कि इंसान कुछ खाए-पिए ही नहीं।

आखिर राजनीतिक जगत में यह अफसोसनाक विचार आया ही कैसे कि कानून उस बात को पैदा कर सकता है जो उसके भीतर है ही नहीं: सकारात्मक भाव में अच्छी बात, जैसे संपत्ति, विज्ञान और धर्म?

आधुनिक राजनीतिक विचारक, खासतौर पर वे जो समाजवाद से प्रभावित हैं, अपना विविधता भरा एक आम परिकल्पना पर आधारित रखते हैं, निश्चित ही सबसे ज्यादा हैरानी भरी, इंसान के दिमाग में प्रवेश करने वाला सबसे दंभी और अक्खड़ विचार।

वे इंसानों को दो भागों में बांट देते हैं। लोगों में मौजूद समानताएं, एक अपवाद के अलावा पहला भाग बनाती हैं। राजनीतिक सिद्धांतक अपने ही बूते दूसरे का निर्माण कर देते हैं और जो अब तक का सबसे महत्वपूर्ण भाग है।

हकीकत में तो वे यह मानकर ही चलने लगते हैं कि इंसान में ललक और विवेक का पैदाइशी अभाव होता है। साथ में यह भी उनमें किसी काम को करने को लेकर कोई उत्साह नहीं होता और वे बेहद जड़ से होते हैं। ऐसे निष्क्रिय अंशों से बने जिनमें उत्साह नाम की कोई बात नहीं और ज्यादा से ज्यादा एक वनस्पति की तरह एक अलग अस्तित्व वाले। ऐसे

लोग जो बाहर से थोपी गई बात को स्वीकारने के लिए तैयार होते हैं और जिनके अनगिनत आकार-प्रकार, कलात्मक और कुछ पूर्ण नमूने मौजूद होते हैं।

इसके बाद वे खुद ही खुद को ऐसा व्यक्ति समझ लेते हैं संयोजक, खोजी, कानून प्रदाता या संस्थापक जो उस दुनिया को बनाने वाले जितना ही शक्तिशाली है, वह परमशक्ति जिसका मूल उद्देश्य ही तिनकों की तरह इधर-उधर बिखरे इंसान को एक सूत्र में पिरोना है।

इसी पूर्वाग्रह के साथ शुरूआत करके , किसी बाग, पेड़ पौधों को अपनी सोच और झक से संवारने और आकार (पिरामिड, पेरासोल, क्यूब, कोन्स, वेस, एस्पेलियर, डिस्टाफ, पंखा) देने वाले की तरह, हर समाजवादी अपनी झक के हिसाब से इंसानों को समूह, कतारों, केंद्रों, उपकेंद्रों, सेल, सोशल वर्कशॉप, एक जैसे, विविधता भरे सांचों में ढाल देता है।

और जिस तरह से गार्डनर को बगीचे को संवारने के लिए औजारों की दरकार होती है, इसी तरह से कृत्रिम रूप से बनाई गई सामाजिक व्यवस्था के लिए भी प्रशुल्क कानून (टेरिफ लॉ), कर कानून, राहत कानून और शिक्षा कानून जैसेऔजारों की जरूरत होती है।

वाकई यह कितना खरा है कि समाजवादी इंसान को कच्चे माल की तरह समझते हैं, जिसे विभिन्न आकार-प्रकार के सामाजिक सांचों में ढाला जा सकता है। कामयाबी का यकीन नहीं होने पर इसमें से कुछ हिस्सा तो प्रयोग के लिए मांगा ही जा सकता है। हम जानते हैं कि सभी प्रणालियों और तंत्रों से प्रयोग का यह शगल क्या गुल खिला सकता है। हमारे एक नेता ने तो संविधान सभा में पूरी गंभीरता के साथ अपने सामाजिक प्रयोग आजमाने के लिए एक जिले को उनके हवाले कर देने की मांग तक कर डाली थी।

होता यह है कि कोई भी आविष्कारक बड़े पैमाने पर निर्माण से पहले अपनी मशीन का छोटा मॉडल बनाता है। एक केमिस्ट भी कुछ रिएजेंट्स आजमाता है और किसान भी खेत के एक कोने में इसी तर्ज पर नये बीजों को आजमाता है।

लेकिन एक माली और उसके पेड़-पौधों, एक आविष्कारक और उसकी मशीन, एक केमिस्ट और उसके रिएजेंट, एक किसान और उसके खेतों के बीच में कितना अतुलनीय अंतर होता है। समाजवादी पूरी निष्ठा के साथ यही सोचता है कि उसके और बाकी की मानव जाति के बीच भी इतना ही अंतर है।

हमें इस बात को लेकर हैरान होने की जरूरत नहीं है कि 19वीं सदी के राजनीतिक विचारक सोचते हैं कि समाज तो कानून के निर्माताओं की प्रतिभा से हासिल एक कृत्रिम देन है।

यह विचार उस पारंपरिक शिक्षा का परिणाम है, जो हमारे देश के सभी विचारकों और महान लेखकों के दिलोदिमाग पर हावी रही है।

ये सभी मानव जाति और कानून निर्माताओं (लेजिस्लेटर) के संबंधों को मिट्टी और कुम्हार के बीच के संबंधों की तरह से ही देखते हैं।

यहां तक कि अगर वह किसी इंसान के दिल में काम करने का कोई सिद्धांत या समझदारी का सिद्धांत देखता है तो इस दैवीय तोहफे को हानिकारक मानकर यह निष्कर्ष भी निकाल लेते हैं कि इन्हीं दो प्रवृत्तियों के कारण इंसान आज पतन की इस स्थिति तक पहुंचा है। वास्तविकता में तो वह मानते है कि अगर लोगों को उनके रूझान के ही हिसाब से जीने दिया गया तो इंसान खुद को धर्म तक ही सीमित रखकर नास्तिक बन जाएगा। शिक्षा से महज अज्ञानता तक और श्रम व व्यापार से महज गरीबी की गर्त तक ही पहुंच सकेगा।

सौभाग्य से, इन्हीं लेखकों के मुताबिक, कुछ ऐसे लोग भी हैं-गवर्नर और कानून के निर्माता-जिन्हें न केवल खुद के बल्कि दूसरों के भी भले के लिए काम करने वाला एक ठीक विपरीत रूझान का दैवी तोहफा मिला हुआ है।

मानवजाति जबकि बुराई की ओर जाने को तैयार होती है, वे उसे अच्छाई की ओर ले जाते हैं। मानव जाति अंधेरे की ओर प्रवृत्त होती है, वे उसे उजाले की ओर ले जाते हैं। और जब इंसान पाप की ओर जाने लगता है तो वे उसे पुण्य का मार्ग दिखाते हैं। और इसी सोच के चलते वे खुद के लिए और ताकत की मांग करते हैं ताकि वे अपने रूझानों का समूची मानवजाति के लिए सकारात्मक इस्तेमाल कर सकें।

यह एक पिटारा सा खोल देने के लिए पर्याप्त है। दर्शनशास्त्र की एक पुस्तक, राजनीति और इतिहास की पुस्तक, महज यह देखने के लिए खुल जाती है कि इस सोच, जिसे पारंपरिक अध्ययन की बेटी और समाजवाद की मां कहा जा सकता है, को देखने के लिए कि मानवजाति तो महज एक जड़ वस्तु है। उसे जिंदगी, संगठन, नैतिकता और संपत्ति सबकुछ सरकार के दम पर ही मिलता है। इससे भी बुरी बात तो यह है कि मानवजाति खुद पतन की गर्त में जाती है और इस पतन को केवल कानून निर्माताओं के मजबूत हाथ से ही रोका जाता है। परंपरागत विचार हमें हर कहीं यही बताते रहे हैं कि हर निष्क्रिय समाज के पीछे अदृश्य शक्ति होती है, कानून के नाम पर या कानून देने वाले के नाम पर, या फिर उसका उल्लेख एक ज्यादा आसान और अस्पष्ट उद्बोधन 'वे' के तौर पर किया जाता है जो मानवजाति को चलाती, मार्गर्शन करती है, उसे समृद्ध करती है और उसे उन्नत बनाती है।

बोसेत

वे' (कौन?) इजिप्ट के लोगों के दिलोदिमाग पर एक बात की छाप छोड़ने में कामयाब रहे थे कि अपने देश के लिए प्रेम...देश के लिए नाकारा होने की अनुमति नहीं थी, कानून ने हर व्यक्ति के लिए काम तय कर रखा था, जो पिता से पुत्र को मिलता था। किसी को भी एक

साथ दो काम करने या अपना पेशा बदलने की इजाजत नहीं थी...लेकिन एक ऐसा पेशा था जिसे सभी अपना सकते थेः कानून का अध्ययन और बुद्धिमता। धर्म और देश के कायदे-कानून के प्रति अज्ञानता को किसी भी परिस्थिति में स्वीकार नहीं किया जाता था। साथ ही हर पेशे के लिए एक इलाका तय था (किसके द्वारा?)...अच्छे नियमों में (किसके बनाए?) में से एक यह था कि हर एक को निरीक्षण का मौका दिया जाता था...उनके वैज्ञानिकों ने इजिप्ट को एक से एक बेहतरीन आविष्कार दिए थे और उनको हर उस बात की जानकारी दी जाती थी जो लोगों के जीवन को और अधिक आसान और शांतिपूर्ण बनाती थी।

बोसेत के मुताबिक लोग खुद से कोई प्रेरणा नहीं लेते थेः देशभक्ति, संपत्ति , उद्योग, बुद्धिमत्ता, आविष्कार, खेतीकिसानी, विज्ञान सबकुछ उनको कानून या राजा के जरिये मिलता था। लोगों की भागीदारी केवल इन कामों को करने भर की थी। जब डियोडोरस इजिप्ट के लोगों की कुश्ती और संगीत को खारिज करने के लिए आलोचना करते हैं तो बोसेत उन्हें धिक्कारते हैं। यह कैसे संभव है, जबकि इन कलाओं का विकास ट्रिस्मेगिस्तस ने किया था?

ऐसा ही पर्शियावासियों के साथ भी हैः

कृषि का विकास राजकुमार की प्राथमिक जिम्मेदारियों में हुआ करता था...चूंकि कुछ पद सेना के संचालन और प्रबंधन के लिए तय थीं तो कुछ पद कृषि संबंधी मामलों के लिए भी थे...। पेरिस के लोगों के दिलोदिमाग में शाही घराने के लिए जो सम्मान था वो अतिरेक की स्थिति तक पहुंच चुका था।

बहुत ज्यादा बुद्धिमान होने के बावजूद ग्रीक तुलनात्मक तौर पर अपने भविष्य के निर्धारण पर अधिकार नहीं रखते थे, घोड़ों और कुत्तों की तरह, उन्होंने आसान से खेलों का भी विकास नहीं किया होता। परंपरागत सोच (क्लासिकल थॉट) में तो यह मानकर ही चला जाता है कि इंसान के भीतर हर चीज बाहर से आती है अंदर से नहीं।

स्वाभाविक तौर पर बुद्धिमान और साहसी ग्रीक लोगों को शुरूआती दिनों में राजाओं और इजिप्ट द्वारा भेजे गए उपनिवेशकों के जरिये ही शिक्षा मिली थी। यहीं से उन्होंने व्यायाम, दौड़ और घोड़ों व रथों की दौड़ सीखी...लेकिन जो सबसे अच्छी बात इजिप्ट के लोगों ने उनको सिखाई थी वो थी विनम्रता, खुद को लोगों की भलाई के लिए कानून के हवाले कर देने जितनी विनम्रता।

फेनेलॉन

अध्ययन और पुरातनता को सराहने के माहौल और लुईए 14वें की ताकत के प्रत्यक्षदर्शी फेनेलॉन *[फ्रैंकॉयस डी सेलिनाक डी ला मोदे फेनेलॉन (1651 -1715), कैम्ब्रल के आर्कबिशप,*

लुईस चौदहवें के पोते का शिक्षक, कलेक्शन ऑफ फेबल्स, द डायलॉग ऑफ द डेड, टेलीमेक के लेखक] इस विचार को मानने से बच नहीं सके कि इंसान मूलतः निष्क्रिय होता है और उसके दुर्भाग्य, समृद्धि, पाप-पुण्य का निर्धारण बाहरी प्रभाव से होता है जो कि कानून के जरिये या कानून बनाने वाले के जरिये उस पर पड़ता है। इसलिए अपनी काल्पनिक आधार वाली रचना, सेलेंतम *[फ्रेंच में सेलेंतम, एक ऐसा काल्पनिक शहर है जहां फेनेलॉन ने टेलीमेक में अपनी सपनों भरी सरकार स्थापित की थी।]* में उन्होंने सभी लोगों के हितों, क्षमताओं, आकांक्षाओं और उनकी तमाम संपत्ति को पूरी तरह से कानून निर्माता के भरोसे ही छोड़ रखा है। चाहे जो हो फैसला उन्हें नहीं लेना था, यह काम हमेशा राजकुमार का होता था। देश तो एक शरीर की तरह था जिसकी आत्मा राजकुमार था। तमाम विचार उसके भीतर ही समाहित हैं, तमाम दूरदृष्टि, सभी संगठनों के सिद्धांत, विकास और परिणामस्वरुप तमाम जिम्मेदारियां भी।

इस अभिकथन को साबित करने के लिए मुझे पूरी सेलेंतम किताब के ही उद्धरण पेश करना होंगे। मैं तो पाठकों को बस इन किताबों का हवाला देकर इस महान काम में से कुछ अंश पेश कर रहा हूँ , वैसे भी हर मामले में इस काम के साथ न्याय करने वाला मैं ही पहला व्यक्ति हूं।

परंपरागत पुरातनता के चौंकाने वाले भोलेपन के साथ फेनेलॉन, कारण के अधिकार और ऐतिहासिक तथ्यों के बगैर, स्वीकारते हैं कि इजिप्ट के लोग आमतौर पर खुश थे और वह इस प्रसन्नता का श्रेय उनकी खुद की बुद्धिमत्ता को नहीं बल्कि उनके राजाओं को था।

अमीर शहर, सहमति के साथ बने ग्रामीण मकान, जबर्दस्त फसल से हर साल हरे-भरे रहने वाले खेत, कभी न झूठ बोलने वाले लोग, भेड़ों से भरे हुए चारागाह, फलों के बोझ तले दबे हुए किसान, पूरा माहौल गडेरियों की बांसुरियों की धुन से गुंजायमान है, हम किसी भी ओर देखें ऐसी ही खुशहाली दिखेगी। मेंटर [टेलीमेक में मेंटर युवा शाहजादे के शिक्षक का नाम है] ने कहा भी है, 'खुश हैं वे लोग जो एक समझदार राजा द्वारा शासित हैं।'

इसके बाद मेंटर मुझे बताते हैं उस खुशी और संपन्नता के बारे में जिससे पूरा इजिप्ट पटा पड़ा है। जहां 22 हजार शहर तो गिने जा सकते हैं, बेहतरीन नगर प्रबंधन, गरीबों को अमीरों के खिलाफ मदद करने वाला प्रभावी कानून, बच्चों की अच्छी शिक्षा, ऐसे बच्चे जो आज्ञाकारी, मेहनती और सुशील हैं और जिन्हें कला, साहित्य से प्रेम है, धर्म की सभी आस्थाओं और परंपराओं का पालन, निस्वार्थ भाव, गरिमा का खयाल, सदाचार और हर बच्चे में पिता द्वारा भगवान के लिए सम्मान के भाव की स्थापना। वह इस बेहतरीन व्यवस्था की तारीफ में कसीदे गढ़ने से कभी नहीं चूकते। वह मुझे बताते हैं, 'खुश हैं वे लोग जिन्हें राजा का ऐसा सुशासन मिला हुआ है।'

क्रीट पर तो फेनेलॉन ने और अधिक विमोहक सौम्यकाव्य की रचना की और फिर मेंटर से कहलवायाः

इस शानदार द्वीप पर आप जो कुछ देख रहे हैं यह मिनोस (क्रीट के राजा) के कानूनों की ही देन हैं। यहां बच्चों को जो शिक्षा दी जाती है उसने उनके शरीर को स्वस्थ और मजबूत बना दिया है। वे उन्हें पहले एक साधारण, किफायती और मेहनतकश जीवन के लिए तैयार करते हैं, वे यह मानते हैं कि इंद्रीयों का सुख शरीर और दिमाग को कमजोर कर देता है, वे उन्हें सदाचार और गौरव हासिल करने के सुख से अवगत कराते हैं, वे यहां पर तीन दुराचारों को दंडित करते हैं जो कि अन्य लोगों में दंड की भागीदार नहीं होतीं: कृतघ्नता, ढोंग और लोभ। उनको कभी भी दिखावे और आराम की जिंदगी जीने के लिए प्रतिबंध नहीं लादने पड़ते, क्योंकि क्रीट के लोगों को तो यह बातें पता ही नहीं। वे आलीशान साज-सज्जा या पहनावे या दावतों या महलों की इजाजत नहीं देते।

इस तरह से मेंटर अपने छात्रों को तैयार करते हैं गारे की तरह, चिनाई (मोर्टार) के लिए तैयार, इथाका के लोगों को बिना किसी शकोशुबहा के परोपकारी उद्देश्य में हेरफेर के लिए और ज्यादा सजा के लिए, वह सेलेंतम के उदाहरण दिया करते थे।

इसी तरह हमें हमारे पहले राजनीतिक विचार हासिल हुए हैं। हमें लोगों के साथ व्यवहार वैसे ही सिखाया जाता है जैसे कि ओलिवियर डी सेरेस [*ओलिवियर डी सेरेस (1539 -1619), फ्रांसीसी कृशक जगत के पितामह, हेनरी चतुर्थ के सलाहकार*] ने किसानों को मिट्टी को और अधिक पोषक बनाने के तौरतरीके सिखाए थे।

मोंतेस्कू

वाणिज्य की मूल भावना को कायम रखने के लिए सभी कानूनों को इसका पक्षधर होना चाहिए। इन कानूनों को अपने प्रावधानों से, वाणिज्य में धन के इजाफे के बाद उसके बंटवारे से परिस्थितियों को हर गरीब नागरिक के लिए इतना सुविधाजनक बना देना चाहिए कि वह दूसरों की तरह काम कर सके। और हर अमीर नागरिक को ऐसी परिस्थितियां उपलब्ध कराकर दे कि वह उसे अपनी संपत्ति को बरकरार रखने या उसमें इजाफे के लिए काम करना पड़े।

इस तरह से कानून सभी मेहरबानियों का कारण बनता है।

हालांकि संपत्ति की समानता ही लोकतांत्रिक देश की मूल धारणा है, लेकिन फिर भी इसे हासिल करना इतना मुश्किल काम है कि इसे दुरूस्त कर पाना आसान काम नहीं है। एक तय हद तक यह अंतर कम करने या अंतर तय करने के लिए पर्याप्त होता है, जिसके बाद समानता दिलाना कानून के अधिकार क्षेत्र की बात हो जाती है। यानी बाकी कि विषमताओं

को करों के जरिये मिटाने की कोशिश, जो अमीरों पर लादा जाता है और जिससे गरीबों को राहत दी जाती है।

यहां फिर कानून के जरिये, बलप्रयोग के जरिये लोगों की किस्मत का समानता के लिए निर्धारण किया जाता है।

ग्रीस में दो किस्म के गणतंत्र थे। कुछ बहुत ज्यादा सैन्यप्रधान, स्पार्टा की तरह, कुछ वाणिज्यिक एथेंस की तरह। एक किस्म के गणतंत्र में नागरिकों से आदर्श होने की अपेक्षा होती थी, तो दूसरा उनमें श्रम के लिए प्रेम की भावना स्थापित करने की कोशिश करता था।

मैं पाठकों का ध्यान इन कानून निर्माताओं की गजब की बुद्धिमत्ता की ओर दिलाना चाहूंगा। सभी परंपराओं का निर्वहन करते हुए, सभी सदाचारी गुणों के संरक्षण के साथ उन्होंने दुनिया को बताया कि बुद्धिमत्ता किस चिड़िया का नाम है। लिकर्गस ने चोरी को न्याय की मूल भावना, कठोरतम गुलामी को उन्मुक्तता भरी आज़ादी, सबसे नृशंसतम भावना को संयम के साथ मिलाकर अपने शहर को स्थिरता दी थी। उसने शहर को सारे संसाधनों, कला, वाणिज्य, धन और रक्षा से वंचित कर दिया था। वहां महत्वाकांक्षा थी लेकिन बेहतरी की गुंजाईश नहीं, प्राकृतिक अनुराग था लेकिन वहां कोई भी व्यक्ति बच्चा या पति या पिता नहीं था। यहां तक कि शील (चेस्टिटी) तक को कोई सम्मान हासिल नहीं था। यही वह तरीका था जिससे स्पार्टा ने वैभव और गौरव हासिल किया था...।

यही असाधारण सा घटनाचक्र ग्रीस के संस्थानों में भी देखा गया। आधुनिक युग के भ्रष्टाचार और पतन के बीच। एक कानून निर्माता, एक सच्चे ईमानदार व्यक्ति ने ऐसे लोगों को तैयार किया जो कुदरती तौर पर उतने ही ईमानदार लगते हैं जितने बहादुरी के मामले में स्पार्टा के लोग। श्रीमान पेन, सही मायनों में लिकर्गस की तरह थे हालांकि पेन ने शांति को अपना उद्देश्य बनाया और लिकर्गस ने युद्ध को। दोनों में इस बात की समानता है कि वे अपने सभी लोगों को एक तय दिशा में ले गए, उस प्रभाव के साथ जो उन्होंने इन आजाद लोगों पर कायम किया था, पूर्वाग्रहों पर मात देने में, उस जोश में जो उन्होंने समाप्त कर दिया था।

पराग्वे हमें एक और उदाहरण उपलब्ध कराता है। नेतृत्व के अधिकार को ही जिंदगी का लक्ष्य बना लेने का मतलब है समाज के खिलाफ अपराध करने की तैयारी, लेकिन लोगों को ऐसा नेतृत्व देना जो उनको खुशी दे हमेशा ही सराहनीय रहा है।

जो लोग ऐसे संस्थान चाहेंगे वे एक ऐसी सत्ता की स्थापना करेंगे जिसमें जायदाद पर संप्रदाय का आधिपत्य होगा। जैसा कि प्लेटो की रिपब्लिक में देखने को मिलता है। जिसमें उसके द्वारा भगवान के लिए मांगी गई श्रद्धा थी और नैतिकता के बचाव के लिए विदेशियों

और मूल निवासियों के बीच दूरियां। जहां सरकार नहीं लोगों की वाणिज्य में भागीदारी होगी, वह हमें हमारी कला देंगे बगैर हमारी विलासिता के और हमारी जरूरतों को पूरा करेंगे हमारी इच्छाओं को नहीं।

अविचारी समाज अपने लोभ के चलते हो सकता है कि होहल्ला मचाए, 'यह तो मोंतेस्कू ने कहा था, इसलिए यह अद्‌भुत ही होगा। यह उदात्त (सबलाइम) है!' मैं अपने दृढ़ विश्वास के आधार पर कह सकता हूं, 'या! उसे सुंदर कहने की धृष्टता (हेव द चीक) तुम्हारे में है!'[एक गीतिका (सोनेट) की मक्कारी भरी तारीफ करने वाले फिलिंते को उसके दोस्त अलसेस्ते ने यही जवाब दिया था। (मोलियर, ली मिसेंथ्रोप, भाग पहला, दृश्य दूसरा)]

लेकिन यह भयावह है! अप्रिय! और यह नजीर (साइटेशंस) जिन्हें मैं और भी दे सकता हूं, बताती हैं कि मोंतेस्कू के अनुसार इंसान, उसका व्यक्तित्व, उसकी आज़ादी और उसकी जायदाद, समूची मानवजाति की यही बातें, कुछ और नहीं कानून के निर्माताओं को अपनी बुद्धिमत्ता आजमाने के लिए उपलब्ध कच्चा माल है।

रोस्यू

हालांकि यह राजनीतिक सिद्धांतक जो डेमोक्रेट्स में शीर्ष अधिकारी था, समाज के ढांचे को आम स्वेच्छा पर आधारित रखते हैं, उनसे ज्यादा किसी ने मानव नस्ल की जड़ता को कानून देने वालों के हाथ में सौंपने की परिकल्पना को नहीं स्वीकारा है।

अगर यह सही है कि महान राजकुमार बिरले होते हैं तो फिर एक महान कानून प्रदाता के बारे में क्या कहा जाए? पहले को तो केवल उसी मॉडल पर चलना है जो दूसरा तैयार करके देता है। बाद वाला तो एक शिल्पी है जो अपने काम को सहज और बेहतर बनाने के लिए मशीन बना लेता है, पहला तो केवल ओपेरटर है जो इस मशीन को बस चालू और बंद करता है।

और इसमें इंसानों की भूमिका कौनसी है? वह मशीन जिसे बंद-चालू किया जाता है या फिर वह कच्चा माल जिससे मशीन बनाई गई है!

इसलिए कानून प्रदाता और राजकुमार के बीच वही संबंध है जो एक कृषि विशेषज्ञ और एक किसान के बीच है। राजकुमार और उसकी प्रजा में वही संबंध है जो एक किसान और उसकी मिट्टी में है। और ऐसे में एक राजनीतिक सिद्धांतक ने खुद को इंसान से कितना ऊंचा उठा लिया है, क्योंकि वह कानून निर्माताओं पर राज करता है और उनको उनके पेशे के बारे में इस आदेशात्मक परिभाषा के साथ सिखाता हैः

क्या आप राष्ट्र में स्थायित्व चाहते हैं? तो चरम परिस्थितियों को जितना संभव हो पास-पास ले आओ। न तो अमीरों को अनुमति दो और न ही भिखारियों को।

क्या जमीन बंजर जैसी है या क्या तुम्हारे देश में लोगों के रहने के लिए पर्याप्त स्थान नहीं है? तो उद्योग और कला की मदद से ऐसे उत्पाद बनाओ जिनकी मदद से तुम वो बातें हासिल कर सको जो तुम्हारे पास नहीं है। क्या तुम्हारे पास अच्छी उपजाऊ जमीन है और क्या तुम्हारे पास पर्याप्त लोग नहीं हैं? तुम अपना पूरा ध्यान कृषि पर ही दो जो आबादी बढ़ाने में भी मदद करती है और कला को खत्म कर दो जो केवल देश की आबादी को घटाने का ही काम कर सकती है। अगर आप तटीय इलाके पर भी पूरा कब्ज़ा कर लेते हैं और समुद्र को जहाजों से पाट देते हैं तो आपका अस्तित्व गजब का, लेकिन बहुत संक्षिप्त होगा। क्या आपके देश का समुद्र केवल पहुंच से बाहर रहने वाली चट्टानों से सिर फोड़ता रहता है? तो जंगली और मछली खाने वाले बने रहो, तुम ज्यादा शांति से रह सकोगे। शायद बेहतर तरीके से और समुद्र को छानने वालों से तो बहुत ज्यादा सुखी। एक शब्द में कहें तो सभी लोगों में समानता का जायजा लेने के साथ ही हमें यह बात भी नहीं भूलना चाहिए कि हर देश की अपनी परिस्थितियां होती हैं जो उसकी अपनी होती हैं और उसका कानून उन्हीं परिस्थितियों में कारगर होने की संभावना होती है। इसी वजह से एक जमाने में हेब्रू और हाल के वक्त में अरबों ने धर्म को अपना आधार बना रखा है तो एथेंस के लोगों ने साहित्य, कार्थेज और टायर ने वाणिज्य, रोड्स ने सीसर्फिंग, स्पार्टा ने युद्ध और रोम के लोगों ने नैतिकता को अपना आधार बना रखा है। द स्पिरिट ऑफ द लॉज के लेखक ने हमें बताया है कि किस सफाई के साथ कानून के निर्माता हमारी शिक्षा को इन उद्देश्यों को हासिल करने के लिहाज से ही ढालते हैं। लेकिन अगर कानून का निर्माता अपने उद्देश्य को गलत भांपकर लोगों में कुदरती तौर पर मौजूद बात से विपरीत सिद्धांत अपना लेता है, अगर कोई गुलामी, कोई आज़ादी, कोई संपत्ति, कोई आबादी, कोई शांति और अन्य कोई लड़ाईयों की ओर रूख कर लेता है तो कानून धीर-धीरे कमजोर होता जाएगा। संविधान का महत्व घट जाएगा और देश में हमेशा आंदोलन ही होते रहेंगे जब तक कि या तो वह खत्म नहीं हो जाता या बदल नहीं जाता, जब तक कि अपराजेय प्रकृति उस पर अपना कब्ज़ा नहीं कर लेती।

लेकिन अगर प्रकृति इतनी अपराजेय है कि वह दोबारा नियंत्रण हासिल कर सकती है, तो फिर रोस्यू यह यों नहीं मान लेते कि उन्हें कानून निर्माता को यह नियंत्रण मिलने देने की कोई जरूरत ही नहीं है? वह यह यों नहीं मान लेते कि लोग स्वप्रेरणा से खुद को कृषि की ओर मोड़ लेंगे अगर जमीन उपजाऊ है तो, वाणिज्य की ओर मुड़ जाएंगे अगर तट जहाजों की आवाजाही के लिहाज से माकूल हैं। इसके लिए उनको किसी लिकर्गस, सोलोन या फिर रोस्यू की जरूरत नहीं पड़ेगी, जो हो सकता है गलत भी हो?

हर सूरत में रोस्यू ने वाकई कितनी भयावह जिम्मेदारी आविष्कारकों, देश के संस्थापकों, नेता, कानून प्रदाता और समाज को चलाने वालों को सौंपी है। उसने उनसे बहुत ज्यादा अपेक्षा की है।

जो कोई भी किसी देश की स्थापना का प्रयास करता है, उसे खुद में मानव नस्ल को बदल देने की क्षमता का विश्वास भी होना चाहिए। या यूं कहें कि हर एक व्यक्ति को बदलने की क्षमता। जो अपने आप में निर्दोष और परिपूर्ण हो और जो एक ऐसे ही बड़े समाज का हिस्सा बन सके, जिससे हर व्यक्ति को जिंदगी या उसका जिंदगी का हिस्सा मिल सके। इंसान में आमूलचूल परिवर्तन कर सके ताकि वह और अधिक मजबूत हो सके। हमें प्रकृति से मिले शारीरिक और स्वतंत्र अस्तित्व को एक आंशिक और नैतिक अस्तित्व से बदलने की क्षमता भी उसमें होना चाहिए। एक शब्द में कहें तो उसमें इंसान से उसकी शक्तियां छीनकर उसे ऐसी शक्तियां देने की कूव्वत होनी चाहिए जिनसे वह इंसान अब तक अनजान था...।

बेचारी मानवजाति! रोस्यू के चेले आपकी गरिमा के साथ क्या कर रहे हैं?

रेनाल

[*एबे गुईलॉम रेनाल (1713-1786), इतिहासकार और दार्शनिक, उन्हें फ्रांस के मध्ययुगीन साहित्य पर किए गए काम के लिए खास तौर पर जाना जाता है।*]

जलवायु, यानी हवा और मिट्टी, कानून प्रदाता के आधारभूत मार्गनिर्देशक। उसके संसाधन उसके कर्तव्यों पर हावी होते हैं। उसे सबसे पहले अपने स्थान की परिस्थितियों का आंकलन करना होता है। समुद्र तट के करीब रहने वालों के लिए कानून ऐसा होना चाहिए जो उनके समुद्र के जरिये आवागमन और व्यापार के हित में हो। अगर बस्ती मुख्य भूमि पर है तो फिर उसे मिट्टी की गुणवत्ता और स्तर का अपने कानून में शुमार करना पड़ता है।

संपत्ति और जमीन के वितरण में उसकी बुद्धिमत्ता की झलक दिखाई देगी। सामान्यतया और दुनिया के सभी देशों में, जब एक बस्ती की स्थापना की जाती है तो सभी को जमीन दी जाती है, जो उसके परिवार के पालनपोषण के लिहाज से पर्याप्त हो...।

जब किसी वीरान द्वीप पर बस्ती बसानी हो, जिसमें आप बच्चे रखना चाहते हों तो आपको उनके भीतर केवल सच्चाई के बीजों को विकसित होने का मौका देना होगा, लेकिन जब आप किसी नये देश में वयस्कों को बसाते हैं तो, आपकी सफलता इस बात पर निर्भर होती है कि आप किस तरह से उन्हें पुराने नुकसानदेह विचारों और परंपराओं पर ही कायम रख पाते हैं। अगर आप उनको बर्बादी से बचाना चाहते हैं तो आपकी अगली पीढ़ी को बचाने के लिए उनके बच्चों को एक आम सरकारी स्कूल में ही पढ़ाना होगा। एक राजकुमार, कानून निर्माता कभी भी कुछ बुद्धिमान लोगों को भेजे बगैर कोई बस्ती या उपनिवेश नहीं बसाता। नई बस्ती

में सभी सुविधाएं लोगों के व्यवहार और नैतिक आचरण को सुधारने वाले कानून निर्माता को उपलब्ध होती हैं। अगर जमीन और लोग उसके अधीन होंगे तो वह उसकी आत्मा को एक ऐसी बेहतरीन दुनिया को साकार करने का मौका दे देंगे जिसकी एक लेखक महज अस्पष्ट सी कल्पना ही कर सकता है। ऐसी कल्पना जो अस्पष्ट होगी और जिसके परिणामों के बारे में पहले से बता पाना भी मुश्किल ही होगा।

क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि आप कृषि विषय के एक प्राध्यापक को अपने छात्रों को लेक्चर देते हुए सुन रहे हैं? जलवायु हर किसान की जिंदगी का सबसे अहम सिद्धांत होता है। उसके संसाधन उसके कामकाज का निर्धारण करते हैं। उसे सबसे पहले अपने स्थान का विचार करना चाहिए। अगर मिट्टी चट्टानी है तो उसे उसी लिहाज से काम करना होगा और अगर मिट्टी रेतीली है तो उसे उस लिहाज से अपनी योजना बदलनी होगी। अपने खेतों को साफ करके फसल उगाने के लिए तैयार किसान को हर सुविधा उपलब्ध होती है। अगर उसमें काबिलियत है तो उसे मिलने वाली खाद उसे अपनी योजना बनाने के लिए प्रोत्साहित करेगी, जिसकी एक प्रोफेसर महज कल्पना ही कर सकता है, ऐसी कल्पना जो अस्पष्ट होगी और जिसके परिणामों के बारे में पहले से बता पाना भी मुश्किल ही होगा।

लेकिन उदात्त लेखकों को कभी-कभी यह याद आ ही जाता है कि ये मिट्टी, ये रेत, ये गोबर के ढेर, जिन्हें तुम निरंकुश भाव से बेच देते हो, तुम्हारे जैसे ही इंसानों, तुम्हारी ही बराबरी के, तुम्हारे जितने ही बुद्धिमान और आजाद को भगवान से मिले हैं। ठीक तुम्हारी ही तरह, देखने की शक्ति, योजना की शक्ति, सोचने की शक्ति और अपना फैसला खुद लेने की क्षमता भी उन्हें भी मिली हुई है।

मेबली

[*गैब्रियल बोनोत डी मेबली (17091785), इतिहासकार और दार्शनिक, ज्यादा मशहूर कोंडिलेक के भाई।*] वह ऐसे देश की कल्पना करता है जहां का कानून वक्त के थपेड़े झेलते हुए अप्रचलित सा हो गया है और जिसके संरक्षण की उपेक्षा हो रही है और वह इस तरह से अपनी बात रखते हैं:

ऐसी परिस्थितियों में लोगों को यह यकीन दिलाना बेहद जरूरी है कि सरकार के नियंत्रणों में ढील दे दी गई है....उन्हें एक नया तनाव दे दो (यहां मेबली पाठकों से संवाद साध रहे हैं), और बीमारी को ठीक कर दिया जाएगा। गलतियों को दंड के बारे में कम सोचकर उन अच्छी आदतों को प्रोत्साहित करो जिनकी तुम्हें जरूरत है। इस तरीके से आप अपने गणतंत्र की जवानी को वापस ले आएंगे। क्योंकि उनको यह पता नहीं था कि आजाद लोगों ने अपनी आज़ादी गंवा दी है! लेकिन अगर बीमारी कुछ ऐसी है कि सामान्य मजिस्ट्रेट उसका

संतोषजनक हल नहीं कर पा रहे तो फिर न्यायप्रणाली को नये सिरे से व्यवस्थित करो, जिसका कार्यकाल कम होगा और जिसके पास पर्याप्त ताकत होगी। नागरिकों की कल्पनाओं को ऐसे वक्त गति देने की जरूरत होती है...।

और इसी तरह के 20 खंड हैं।

एक जमाना ऐसा था कि पुरातन शिक्षा के आधार माने जाने वाली ऐसी सीख के प्रभाव में हर कोई खुद को मानव समाज से अलग और उनसे बेहतर बनने की कोशिश करने लगा ताकि उन पर राज किया जा सके, उनको संगठित किया जा सके और अपने तरीके से उन्हें शिक्षा दे सके।

कोंडिलेक

[*एतेन बोनोत डी कोंडिलेक (1715 -1780), फ्रांस के जनजागरण अभियान में एक महत्वपूर्ण व्यक्ति, द ट्रिटाइस ऑन सेंसेशन्स के लेखक, जिसने लोक के इंद्रीयों से सभी ज्ञान और अनुभव हासिल करने के सिद्धांत को आगे बढ़ाया। राजनीतिक अर्थशास्त्र पर उनकी सोच को उनकी रचना ले कॉमर्स एत ले गवर्नमेंट में देखा जा सकता है।*]

हे भगवान लिकर्गस या सोलोन के मॉडल पर ही सब-कुछ करो। और आगे पढ़ने से पहले कानून को अमेरिका या अफ्रीका के किसी कबीले को देकर आनंद उठाओ। इन खानाबदोशों को बस्तियों में कैद कर दो, उनको पशुपालन की शिक्षा दो...उन सामाजिक समानताओं को विकसित करने की कोशिश करव जो उनको कुदरत ने दी है... उन्हें इंसानियत से जुड़े कर्तव्यों के निर्वाह का आदेश दो...उनके इंद्रीय सुख में बाधा बनाने के लिए दंडों का प्रावधान कर दें और आप देखेंगे कि ये जंगली लोग कानून के हर अनुच्छेद के साथ एक बुराई को छोड़कर एक अच्छाई को स्वीकार करेंगे।

सभी देशों में कोई न कोई कानून रहा है। लेकिन उनमें से कुछ ही खुश हैं। आखिर इसका कारण क्या है? बात दरअसल यह है कि कानून के प्रदाता हमेशा इस बात से अनभिज्ञ रहे हैं कि समाज का काम एक समान हित की उम्मीद से परिवारों को एकजुट करना है।

कानून की निष्पक्षता दो बातों में होती हैः संपत्ति में समान भागीदारी सुनिश्चित करके और नागरिकों की गरिमा भी। आपका कानून लोगों के बीच बराबरी को जितना प्रोत्साहित करेगा वह लोगों के बीच उतना ही लोकप्रिय होगा। आखिर लालच, महत्वाकांक्षा, वासना, आलस्य, रंजिश, घृणा या ईर्ष्या कैसे इंसान को संपत्ति या गरिमा के मामले में बराबर कर सकती है और जिसे कानून इस समानता को प्रभावित करने की कोई उम्मीद न जगाता हो। (एक सुखद गलियारा आगे है।)

इस सवाल का जवाब आपको स्पार्टा के गणतंत्र के बारे में दी गई जानकारी से मिल जाएगा। दुनिया के किसी भी देश में प्रकृति या समानता के लिहाज से इतने बेहतरीन सामंजस्य वाले कानून नहीं रहे हैं।[5]

इसमें हैरत की कोई बात नहीं है कि 17वीं और 18वीं सदी में इंसान को एक निष्क्रिय नस्ल समझा जाता था, जो एक राजकुमार, एक कानून प्रदाता, एक बेहद कुशाग्र व्यक्ति से हर बात पाने के लिए आतुर रहता था-आकृति, आंकड़े, प्रेरणा, गतिशीलता और जिंदगी। यह सदियां पुरातनता के अध्ययन पर फलीफूलीं और यह हमें हर जगह उपलब्ध थी इजिप्ट में, पर्शिया में, ग्रीस में, रोम में। कुछ लोगों द्वारा इंसानों के बड़े से समूह को बल और ढोंग के बल पर अपने इशारों पर नचाने का एक महान तमाशा। आखिर ये साबित क्या करता है? यह कि चूंकि इंसान और समाज में सुधार की क्षमता है, इसलिए वहां शुरूआती इतिहास में ज्यादा गलतियों, अज्ञानता, निरंकुशता, गुलामी और अंधविश्वास की गुंजाईश भी होती है। मैंने जिन लेखकों के उदाहरण दिए हैं उनकी गलती यह नहीं थी कि उन्होंने प्राचीन तथ्यों को स्थापित किया, बल्कि यह थी कि उन्होंने उन्हें आदर्श और अगली पीढ़ी के पालन के लिए उपयुक्त करार दिया। उनकी गलती यह है कि उन्होंने सही फैसले के अकल्पनीय अभाव और बचपने जैसे भरोसे के साथ इसे स्वीकार लिया। खासतौर पर वो जो अमान्य है यानी वैभव, गरिमा और नैतिकता और आधुनिक युग की इन कृत्रिम समाजों का भला। वे यह बात समझ पाने में नाकाम रहे कि शिक्षा के उजाले के प्रसार के लिए वक्त लगता है और जहां तक कि उसे हासिल करना हो। अब और ताकत के बूते अधिकारों पर नियंत्रण की और जरूरत नहीं है। समाज खुद नियंत्रण अपने हाथ में ले लेता है।

और हकीकत में, आज वैश्विक मामलों में कौनसा राजनीतिक रुझान देख रहे हैं? कम या ज्यादा भले ही हो लेकिन सभी देश आज़ादी की ज्यादा से ज्यादा बातें करने लगे हैं।[6] और यह आज़ादी क्या है, बस जिसके नाम से ही पूरी दुनिया के दिल जोरजोर से धड़कने लगते हैं, यह है सभी स्वतंत्रताओं का मिश्रण-अंतःकरण की आज़ादी, शिक्षा, संगठन, प्रेस की, आवागमन की, श्रम की, आदानप्रदान की शांतिपूर्ण आज़ादी। दूसरे शब्दों में हर किसी को अपनी पूरी काबिलियत का शांतिपूर्ण तरीके से इस्तेमाल करने की आज़ादी। कुछ और खुलासा करें तो निरंकुश शासन का अंत, कानूनी निरंकुशता का भी और कानून को उसके मूल तार्किक उद्देश्य तक ही सीमित कर देना और वो उद्देश्य है हर एक व्यक्ति को आत्मरक्षा और अन्याय का विरोध करने देने का अधिकार दिलाना।

मानना पड़ेगा कि मानव जाति की इस प्रवृत्ति को कुचला जाता है, खासतौर पर हमारे देश में। इस मनोवृत्ति के सहारे, जो ढपोरशंखी शिक्षा से आती है, जो कि हर राजनीतिक विचारधारा

में समान है, कि खुद को मानव जाति से ऊपर रखकर उन्हें अपने हिसाब से एकजुट करने, व्यवस्थित करने और शिक्षित करने की मनोवृत्ति।

एक ओर जबकि समाज आज़ादी हासिल करने के लिए छटपटा रहा है, ये महान लोग जो इसके शीर्ष पर बैठे हैं, 17वीं और 18वीं सदी के ढपोरशंखी विचारों के साथ, इसे अपने कृत्रिम सामाजिक ढांचों के साथ केवल परोपकारी निरंकुशता के तहत विनीत भाव सेरोस्यू की भाषा में-सामाजिक उद्धार के उद्देश्य से- जैसी कि उन्होंने कल्पना की थी।

सेंट जस्ट

[*लुईस एंटोइन लियोन डी सेंटजस्ट (1767 -1794), फ्रांसीसी क्रांति का एक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व। रेन ऑफ टेरर के लिए जिम्मेदार पब्लिक सेफ्टी कमेटी के सदस्य। रॉसपियर का खास चेला और जिसे रॉसपियर की ही तरह गुलोटिन से मौत मिली, जब उनकी सरकार को सत्ता से हटाया गया।*]

कानून प्रदाता भविष्य को अपने हाथ में रखता है। भगवान की इच्छा को इंसान के लिए इस्तेमाल करना उसका अधिकार है। यह उसी पर निर्भर है कि वह इंसानों को वैसा बनाए जैसा कि वह चाहता है।

रॉसपियर

[*जीन निकोलस बिलॉडवेरेन (1756 -1819), क्रांति के दौरान कन्वेंशन का सदस्य, पहले रॉसपियर का समर्थक था और बाद में उसका दुश्मन बन गया, रेन ऑफ टेरर में भागीदारी के कारण उसे बाद में देशनिकाला दे दिया गया था।*]

सरकार का काम देश के शारीरिक और नैतिक ताकतों की मदद से उस उद्देश्य को हासिल करना है, जिसके लिए वह स्थापित किया गया था।

बिलॉडवेरेन

एक ऐसा व्यक्ति जिसके लिए आज़ादी की स्थापना का मतलब उसका नये सिरे से निर्माण था। चूंकि पुराने पूर्वाग्रहों को समाप्त करना है, पुरातन परंपराओं को बदलना है, दूष्ति रुझानों को सुधारना है, बेवजह की जरूरतों पर अंकुश लगाना है, जिद से भरे पापाचार का समापन, जिस बात की जरूरत है वह है कड़ी कार्रवाई और एक हिंसक मनोवेग की...नागरिक। लिकर्गस की तपस्या के परिणाम, स्पार्टा में गणतंत्र के अडिग आधार बन गए थे, सोलोन के कमजोर और उस पर भरोसा करने वाला एथेंस गुलामी में डूब गया। यह तुलना ही सरकार का समूचा विज्ञान है।

लेपेलेतियर

[*लुईस मिशेल लेपेलेतियर डी सेंटफर्ग्यू (1760-1793), रिवॉल्यूशनरी कन्वेंशन का सदस्य, लुईस सोलहवें की हत्या के पक्ष में मत देने के बाद उसकी हत्या कर दी गई थी।*]

मानव नस्ल के पतन की हद देखने के बाद मुझे इस बात का यकीन हो गया है कि नये सिरे से नस्ल के पुनर्जनन की आवश्यकता है और अगर मैं अपनी बात और स्पष्ट तौर पर कह सकूं तो बिलकुल नये लोग तैयार करने की।

आप देखते ही हैं कि इंसान कुछ और नहीं कच्चे माल की तरह हैं। भगवान की आकांक्षा पूरा कर पाना उनके बूते की बात नहीं है क्योंकि वे उस काबिल ही नहीं हैं, सेंट जस्ट के अनुसार ये तो कानून प्रदाताओं का काम है। वे ही हैं जो भगवान की आकांक्षा को पूरा कर सकते हैं।

रॉसपियर के अनुसार, जो रोस्यू की ही शब्दशः नकल करते हैं, कानून प्रदाता शुरूआत राष्ट्रीय लक्ष्य के निर्धारण के साथ करता है। इसके बाद सरकार को बस सारी शारीरिक और नैतिक शक्ति को इसी दिशा में झोंकना होता है। देश खुद इस पूरी प्रक्रिया में निष्क्रिय ही रहता है, बिलॉडवेरेन हमें यह सिखाते हैं कि इसमें केवल वही पूर्वाग्रह, परंपराएं, रूझान और जरूरतें होना चाहिए, जिसका अधिकार इन्हें कानून प्रदाता देता है। वह तो यहां तक कह देते हैं कि एक व्यक्ति की अडिग मितव्ययिता ही गणतंत्र का आधार होती है।

और हमने देखा है कि जब पापाचार इतना बड़ा हो कि आम मजिस्ट्रेट के बूते के बाहर की बात हो, तो मेबली सदाचार की वापसी के लिए तानाशाही का समर्थन करते हैं। वह कहते हैं, 'एक बेहद असाधारण न्याय व्यवस्था की स्थापना करो, जिसका कार्यकाल छोटा हो, लेकिन जिसकी शक्तियां काफी हों। नागरिकों की कल्पनाशीलता को झकझोरने की जरूरत है।'

इस मत को भुलाया नहीं गया है। जरा सुनिए तो रॉसपियर क्या कह रहे हैं:

सदाचार ही गणतंत्र की सरकार का सिद्धांत है और इसे हासिल करने का साधन आतंक। हम हमारे देश में नैतिकता को स्वार्थ, ईमानदारी को सम्मान, सिद्धांतों को परंपराओं, कर्तव्य को औचित्य (प्रोप्रायटी), युक्तिसंगतता (रुल ऑफ रीजन) को फैशन की निरंकुशता (टायरेनी ऑफ फैशन), पापाचार की अवमानना को दुर्भाग्य की अवमानना, गर्व को बेदअबी, आत्मा की महानता को थोथे घमंड से, ख्याति के प्रेम को पैसे के प्रेम, योग्यता को साजिश, प्रतिभा को वाकपटुता से, सच को डींग से, खुशी के आकर्षण को विषयासक्ति के उकतावे से, इंसान की महानता को महान व्यक्ति के ओछेपन से, उदार, शक्तिशाली और खुश लोगों को दोस्ताना, तुच्छ, निकम्मे लोगों से बदल दें, यानी कि सभी पापों को सदाचार से बदल दें। यही एक गणराज्य का सभी सेवाओं और साम्राज्य की सभी खामियों को बदल देने वाला चमत्कार है।

यहां रॉसपियर खुद को बाकी मानवजाति की तुलना में कितनी ऊंचाई पर रख लेता है! और उसके बोलने में आ रही घमंड की बू को भी देखिए। वह अपने आपको केवल इंसान के जबर्दस्त ह्रदय परिवर्तन की इच्छा तक ही सीमित नहीं रखता, वह एक आम सरकार से ऐसे परिणाम की अपेक्षा भी नहीं करता। नहीं, वह खुद इसे लाना चाहता है, आतंक के राज से। जिस भाषण से यह अलंकार (एंटीथिसिस) लिए गए हैं, उसका उद्देश्य ऐसे नैतिक सिद्धांत तय करना जो एक क्रांतिकारी सरकार का मार्गदर्शन कर सके। ध्यान दीजिए यहां रॉसपियर एक तानाशाही की बात कर रहा है। यह न केवल विदेशी हमलावर को मुंहतोड़ जवाब देने या देश के अंदर के विरोध को कुचलने के लिए नहीं है बल्कि यह तो उसकी अपने ही नैतिक सिद्धांतों को संविधान से भी पहले आतंक के जरिये स्थापित करने की कोशिश है। उसकी मांग किसी को भी देशनिकाला दे देने की ताकत से कम आधिकारिक नहीं है। ऐसा आतंक, स्वार्थ, प्रतिष्ठा, परंपरा, औचित्य, फैशन, थोथे घमंड, पैसे के लोभ, अच्छे समाज, साजिश, वाकपटुता, विषयासक्ति और गरीबी के सहारे किया जाएगा। यह तो उसके, रॉसपियर के इन चमत्कारों को कर लेने के बाद -जिस नाम से वह उन्हें बुलाता है-जाकर वह कानून को फिर हस्तक्षेप करने देगा। ओह अभागों! तुम जो खुद को इतना श्रेष्ठ समझते हो। तुम जो मानव जाति को नगण्य मानते हो! तुम सारे सुधार करना चाहते हो! पहले खुद को सुधारो! तुम्हारे लिए तो यही काफी बड़ा काम होगा।

फिर भी आम तौर पर ये प्रतिष्ठित सुधारक, कानून प्रदाता और राजनीतिक सिद्धांतक मानव जाति पर तुरंत निरंकुश शासन नहीं लादना चाहते। नहीं ऐसा भी नहीं है कि वे बहुत नरमदिल या परोपकारी हैं। वे तो केवल कानून की निरंकुशता, निरपेक्षवाद और सार्वभौमिकता की मांग करते हैं। वे तो केवल कानून बनाने की आकांक्षा रखते हैं।

फ्रांसीसी विद्वानों के बीच यह अजीब आदत कितनी आम है यह बताने के लिए मुझे न केवल मेबली, रेनल, रॉस्यू, फेनेलॉन के सभी काम की नकल और बोसेत और मोंतेस्कू की रचनाओं में से लंबे उद्धरण लेने होंगे बल्कि मुझे तो कन्वेंशन की कार्यवाही की पूरी मौखिक रिपोर्ट ही पेश करना होगी। मेरा ऐसा करने का कोई इरादा नहीं है। पाठक खुद इस साहित्य को पढ़ सकते हैं।

इसमें हैरानी नहीं होना चाहिए कि यह विचार नेपोलियन को रास आता। उसने इसे पूरे उत्साह के साथ स्वीकार किया और जोश से लागू करने में भी जुट गया। खुद को केमिस्ट मानते हुए उसने पूरे यूरोप को ही प्रयोग के लिए उपयुक्त द्रव्य समझ लिया। लेकिन जल्द ही यह द्रव्य उत्प्रेरक की तरह साबित हुआ। आधी गलतफहमी दूर होने के बाद बोनापार्त ने सेंट हेलेना में स्वीकारा कि लोगों में कुछ स्वस्फूर्तता है और उसकी आज़ादी को लेकर आक्रामकता

में कुछ कमी आई। फिर भी यह उसे अपने बेटे को मृत्युपत्र में यह शिक्षा देने से नहीं रोक सकाः 'शासन करने का मतलब नैतिकता, शिक्षा और कल्याण को प्रोत्साहन देना है।'

इस सबके बाद यह बताना जरूरी है कि उन स्रोतों से उद्धरण लेकर, जहां से मोरेली, बेब्युफ़, ओवेन, सेंटसिमोन और फोरियर ने अपने सिद्धांत लिए थे? मैं यहां अपने आपको लुईस लां की श्रम संगठन पर किताब से कुछ उद्धरण बताने जा रहा हूं।

[*18वीं सदी का एक कम ख्यात दार्शनिक, जिसे केवल उसकी रचनाओं के जरिये ही जाना जाता है, जिनमें उनके युग की सामाजिक कुरीतियों को सुधारने की सराहनीय जिद देखी जा सकती है (एसाई सूर लेस्पिरित ह्यूमैन, एसाई सूर ले कोयूर ह्यूमैन, 1745, फिजिक डी ला यूति 1784, ली प्रिंस....सिस्टम इन सेग गवर्नमेंट, 1751)। उनकी एक महान काल्पनिक रचना नॉफ्रेज डेस फ्लेस फलोतेंतेस ओ बेसिलियाद 1753 और कोड डी ला नेचर 1755 में विशुद्ध साम्यवादी विचार थे।*]

[*नोएल बेब्युफ़, ला रिपब्लिक देस ईगॉस के संस्थापक जो समग्र सामाजिक और आर्थिक समानता के मत का ही समर्थन करता है। 1796 में उन्होंने अपने समर्थकों (लेस बेबॉविस्तेस) के साथ मिलकर संचालकों को हटाने का षड़यंत्र रचा था। इस षड़यंत्र का भांडाफोड़ हो गया था और इन नेताओं की गिरफ्तारी और बेब्युफ की मौत का सबब बना।*]

[*रॉबर्ट ओवेन (1771-1858), ब्रिटिश सुधारक और समाजवादी, उन्होंने फैक्टरी कर्मचारियों के कामकाज के हालात सुधारने में काफी काम किया।*]

[लुईस लां (1811 -1882), फ्रांसीसी राजनीतिज्ञ और इतिहासकार। सामाजिक 'कार्यशाला' के निर्माता, जिसने सहकारिता और ट्रेड यूनियनों के मूल तत्वों को मिला दिया। उन्होंने प्रतिस्पर्धा के दबाव को समाज की बुराई के तौर पर निरुपित किया था और इसकी बजाय 'हर किसी को जरूरत के मुताबिक, हर किसी से काबिलियत के मुताबिक' काम लेने-देने की वकालत की थी।]

'हमारी योजना में समाज का प्रेरक बल सरकार ही है।'

आखिर सरकार की ओर से समाज को मिलने वाला यह प्रेरक बल आखिर है क्या? जो इसे एम. लुईस लां की योजना पर चस्पा देखा जा सकता है। दूसरी ओर समाज, मानव जाति से कम या ज्यादा कुछ और नहीं।

इसलिए परिभाषा के लिहाज से मानव जाति होने का मतलब एम. लुईस लां से प्रेरक बल हासिल करना है। कहा जाएगा कि यह जो चाहे करने को आजाद है। बेशक मानव जाति किसी की भी सलाह को मानने के लिए आजाद है। लेकिन एम. लुईस लां बात को इस तरीके

से नहीं समझते। उनकी मंशा तो अपनी योजना को कानून में तब्दील करने और फिर उसे बल प्रयोग के साथ थोपने की भी है।

हमारी योजना में, सरकार श्रमिक को कानून का एक तय प्रारुप (कृपया माफ कर दीजिएगा) देती है, जिसकी मदद से ही पूरी आज़ादी के साथ औद्योगिक गतिविधियां की जाती हैं और की जानी चाहिए। सरकार समाज को महज किसी ढलान (डेलिविटी) पर रख देती है जहां से परिस्थितियों के बल और प्राकृतिक तरीके से उसका खुद ही पतन हो जाता है।

लेकिन यह ढलान क्या है? वही जिसका वर्णन एम. लुईस लां कर चुके हैं। क्या यह गहरी गर्त में नहीं ले जाता? नहीं यह खुशी की ओर ले जाता है। फिर भला क्या बात है कि समाज स्वस्फूर्त भाव से खुद को वहां नहीं रखता? क्योंकि वह नहीं जानता कि वह चाहता क्या है और इसलिए उसे एक प्रेरक बल की जरूरत होती है। उसे यह प्रेरक बल कौन देगा? सरकार। और सरकार को प्रेरक बल कौन देगा? एम. लुईस लां।

हम इस कुटिल चक्रव्यूह से निकल ही नहीं पाते-मानवजाति जड़ है और एक ऐसा महान व्यक्ति जो कानून के हस्तक्षेप से इसे चलायमान कर देता है।

एक बार ढलान की राह पर चल देने के बाद, क्या समाज आज़ादी के कुछ उपायों का लुत्फ उठा सकता है? निश्चित तौर पर। और आज़ादी क्या है?

आइए इसका हमेशा के लिए निपटारा कर ही दें आज़ादी का मतलब महज दिए गए अधिकार नहीं है, बल्कि हर इंसान को दी गई ताकत है जो उसे न्याय और संरक्षण के कानून के दायरे में रहकर उसकी काबिलियत को विकसित करने और उसके इस्तेमाल की इजाजत देती है।

और यह कोई खोखला वैशिष्ट्य नहीं है। इसका मतलब गहरा है और इसके परिणाम अगाध। क्योंकि अगर एक बार यह बात मान ली गई कि इंसान को, सचमुच आज़ादी के लिए, अपनी काबिलियत को इस्तेमाल का अधिकार होना चाहिए, तो फिर इसका मतलब है कि समाज की यह जिम्मेदारी है कि वह उसके हर सदस्य को समुचित शिक्षा दे, जिसके बिना इंसान का दिमाग विकसित हो ही नहीं सकता। उत्पादन के औजार दे, जिसके बिना मानव उद्योग चल ही नहीं सकता। अब, समाज अपने हर सदस्य को शिक्षा और उत्पादन के लिए जरूरी औजार अगर सरकार नहीं देगी तो भला कौन देगा?

इस तरह से आज़ादी का मतलब शक्ति है। यह शक्ति किससे बनी होती है? शिक्षा हासिल करने में और उत्पादन के औजारों में। शिक्षा और उत्पादन के लिए औजार कौन मुहैया कराएगा? समाज, जिस पर उनका यह बकाया है। किसके हस्तक्षेप से समाज उन लोगों को भी

उत्पादन के औजार देगा, जिनके पास यह नहीं है? सरकार के हस्तक्षेप से। सरकार यह किससे लेगी?

अब यह पाठक की जवाबदारी है कि वह इसका जवाब दे और यह देखे कि आखिर यह सब किस दिशा में जा रहा है।

हमारे युग की सबसे चौंकाने वाली घटना और जो आने वाली पीढ़ियों को तो पूरी तरह से हतप्रभ कर देगी, वह है वह मत जो तीन परिकल्पनाओं पर आधारित है-इंसान की आधारभूत निष्क्रियता, कानून का सर्वशक्तिमान होना और कानून प्रदाता की अमोघता (इनफालेबिलिटी)। खुद को अकेले लोकतंत्र का हितैषी बताने वाले का तो यही पवित्र चिन्ह होना चाहिए।

यह सच है कि यह अपने आपको सामाजिक भी कहलाती है।

यह लोकतांत्रिक तो है ही क्योंकि इसका मानवजाति में असीमित विश्वास है।

जहां तक यह सामाजिक है, यह मानवजाति को मिट्टी से ज्यादा कुछ नहीं मानती।

अगर बात राजनीतिक अधिकारों की हो रही है, अगर मामला लोगों में से ही लेजिस्लेटर चुनने का है, आह, उनके अनुसार लोग कुदरती ज्ञान से भरे हुए हैं और उनका सहज ज्ञान भी बहुत ही अच्छा है, उनकी इच्छा हमेशा सही होगी, क्योंकि एक सार्वजनिक (जनरल) इच्छा गलत नहीं हो सकती। मताधिकार बहुत ज्यादा सार्वभौमिक नहीं हो सकता। अपनी चुनावी क्षमता को लेकर कोई भी समाज के प्रति जवाबदेह नहीं है। उसकी बुद्धिमानी के साथ चयन की इच्छा और क्षमता पर तो कोई सवाल ही नहीं उठाया जा सकता। क्या जनता गलत हो सकती है? क्या हम जनजागृति के युग में नहीं जी रहे हैं? क्या लोगों को हमेशा किसी न किसी के अधीन ही रहना पड़ेगा? क्या वे अपनी समझदारी और बुद्धिमानी का पर्याप्त उदाहरण नहीं दे चुके हैं? क्या वे परिपक्व नहीं हुए हैं? क्या वे अपने लिए खुद फैसला नहीं ले सकते? क्या वे अपने हितों को अच्छी तरह से नहीं जानते? क्या कोई ऐसा व्यक्ति या वर्ग है जो इन लोगों या वर्ग का विकल्प बनने का दावा कर सके या फिर उनके लिए काम कर सके? नहीं, नहीं, लोग आजाद होना चाहते हैं और ऐसा होना चाहिए। वे अपने मामलों को खुद ही संभालना चाहते हैं और उन्हें ऐसा करना चाहिए।

लेकिन एक बार अगर लेजिस्लेटर का चुनाव हो गया और उसे अपने चुनावी वायदों से मुक्ति मिल गई तो अफसोस उसकी भाषा भी बदल जाती है। देश एक बार फिर से जड़ता, अस्तित्वहीनता की ओर लौट जाता है और लेजिस्लेटर सर्वशक्तिमान की भूमिका में आ जाता है। आविष्कार, दिशा, प्रेरणा, संगठन सबकुछ उसका ही हो जाता है। मानवजाति को कुछ करना नहीं है बल्कि उसे काम किया हुआ मिलना है, निरंकुशता की घड़ी आ गई है। और जान लीजिए कि यह अवश्यंभावी है, क्योंकि लोगों में, जो कुछ अरसा पहले प्रबुद्ध, नैतिक, दोषहीन थे,

कोई झुकाव नहीं है या यूं कहें कि उन्होंने जो किया उसका परिणाम केवल अवनति ही था। और आप चाहते हैं कि उन्हें थोड़ी सी आज़ादी दे दी जाए! क्या आप नहीं जानते कि एम. कांसिदेरांत [*विक्टर कांसिदेरांत (1808-1893), फोरियर की विचारधारा के समाजवादी, वे बतिस्ता की आलोचना के एक प्रमुख केंद्र रहे हैं।*] के अनुसार स्वतंत्रता अंततः हमें एकाधिकार की ओर ले जाती है? क्या आप नहीं जानते आज़ादी का मतलब प्रतिस्पर्धा होता है और एम. लुईस लां के अनुसार, प्रतिस्पर्धा आम आदमी के लिए निर्मूलन का और कारोबारियों के लिए बरबादी का कारण होती है? बरबादी और तबाही की कगार पर खड़े आजाद देशों के उदाहरण के लिए या हमें स्विट्जरलैंड, हॉलैंड, इंग्लैंड और अमेरिका की ओर नहीं देखना चाहिए? क्या आप नहीं जानते कि, प्रतिस्पर्धा- फिर एक बार एम. लुईस लां के मुताबिक- एकाधिकार की ओर ले जाती है और इसी वजह से कम लागत ऊंची कीमतों का कारण बनती हैं? यह कि प्रतिस्पर्धा से खपत (कंजम्प्शन) के संसाधन बुरी तरह से प्रभावित होते हैं और उत्पादन एक विनाशकारी गतिविधि बन जाता है? यह कि प्रतिस्पर्धा से उत्पादन तो बढ़ता है खपत कम होती है? जब यह विचार बन जाता है कि आजाद लोग उत्पादन उसके उपभोग के लिए नहीं करते तो आज़ादी का मतलब दोनों ही हो जाता है- दमन और पागलपन, और यह कि एम. लुईस लां को हस्तक्षेप कर चीजों को दुरूस्त करने का वक्त आ गया है।

उन्हें आखिर कितनी आज़ादी दी जानी चाहिए? क्या यह अंतरात्मा की आज़ादी होना चाहिए? लेकिन वे सभी इस मौके का लाभ उठाकर सौंदर्यप्रेमी (एस्थेटिक) बन जाएंगे। शिक्षा की आज़ादी? लेकिन सारे पिता अपने बच्चों को दुराचार और गलतियों की जानकारी देने के लिए शिक्षकों को पारिश्रमिक देने को तैयार होंगे, इसके अलावा अगर हम एम. थियर्स पर यकीन करें तो अगर शिक्षा की आज़ादी दी गई तो यह राष्ट्रीयता भरी नहीं होगी, हमें अपने बच्चों को तुर्क और भारतीयों के विचारों से अवगत कराना चाहिए, इसकी बजाय विश्वविद्यालय की निरंकुशता के कारण उनकी किस्मत अच्छी है कि उन्हें रोमन लोगों के अभिजात्य विचारों से अवगत कराया जा रहा है। श्रम की आज़ादी? लेकिन यह प्रतिस्पर्धा है जो सभी उत्पादों की खपत को बुरी तरह से प्रभावित करती है और आम आदमी को मटियामेट कर देती है और कारोबारी को भी बरबाद कर देती है।

मुक्त व्यापार? लेकिन यह बात सर्वविदित संरक्षणवादी इसे एड नॉसियम में बता चुके हैं कि मुक्त व्यापार से इंसान बरबाद हो जाता है और समृद्ध बनने के लिए जरूरी है कि वह मुक्त व्यापार न करे। संगठन या साहचर्य (एसोसिएशन) की आज़ादी? लेकिन समाजवादी विचारधारा के अनुसार आज़ादी और संगठन परस्पर तौर पर अलग-अलग हैं क्योंकि एक व्यक्ति से उसकी आज़ादी छीन लेता है ताकि उनको संगठित होने के लिए बाध्य किया जा सके।

तो आप यह स्पष्ट रूप से देख रहे होंगे कि सामाजिक प्रजातंत्रवादी (सोशल डेमोक्रेट्स) अच्छी अंतरात्मा की स्थिति में भी मानव जाति को आज़ादी नहीं दे सकते क्योंकि इंसान, अपने प्राकृतिक स्वभाव के कारण-जब तक कि ये सज्जन बातों को ठीक नहीं कर देते- हर तरह के पतन और अनैतिकता की आशंकाओं से भरा है।

ऐसे में सवाल यह रह जाता है कि वे उनकी सार्वभौमिक मताधिकार के लिए इतना होहल्ला क्यों मचाते हैं।

समाजवादियों की मांगें एक और सवाल उठ खड़ा करती है, जिसका मैं हमेशा उल्लेख करता हूं और जिसका, जहां तक मुझे याद है, उन्होंने कभी कोई जवाब नहीं दिया। चूंकि मानवीय प्रवृत्ति प्राकृतिक तौर पर इतनी अनिष्टकारी है कि उनकी आज़ादी वापस ले ली जानी चाहिए, फिर भला यह कैसे कि समाजवादियों की प्रवृत्ति इतनी अच्छी है? क्या लेजिस्लेटर और उनके एजेंट मानव जाति से ताल्लुक नहीं रखते? क्या वे अपने आपको शेष मानवजाति की तुलना में किसी और मिट्टी से गढ़ा हुआ मानते हैं? वे कहते हैं कि समाज, अगर उसे उसके भरोसे ही छोड़ दिया जाए तो, पतन की ओर ही जाता है यौंकि उसकी प्रवृत्ति ही विकारग्रस्त है। वे मानव जाति के घातक अधोपतन को रोकने और उसे बेहतर दिशा देने के लिए सत्ता की मांग करते हैं। वे गड़ेरिये बनकर हमें अपनी भेड़ें बनाना चाहते हैं। इस व्यवस्था से उनके भीतर एक कुदरती श्रेष्ठता आ जाती है, एक दावा कि हमें जरा सा भी आगे बढ़ने से पहले उनकी जरूरत है।

मैं यहां उनके सामाजिक व्यवस्था बनाने के अधिकार, प्रस्तावों को साकार करने, उन्हें अपनाने की सलाह को उनके अपने खुद के ऊपर प्रयोग और उसके जोखिम को झेलने के अधिकार को चुनौती नहीं दे रहा हूं, लेकिन मेरा इरादा निश्चित ही उनके यह सब कानून की मदद से हम पर थोपने के अधिकार को चुनौती देने का है। पुलिस बल या सार्वजनिक कोष के जरिये।

मैं मांग करता हूं कि केबेट, फूरियर, प्रोदोन [*एटेन केबेट (1786 -1856), फ्रांसीसी समाजवादी, विचारक और प्रयोगवादी। उन्होंने फ्रांस में संगठनों की स्थापना की, रेड रिवर, टेक्सास और नॉवू, इलिनोइस में भी ताकि अपनी रचना वॉयेज ऑफ इकेरिया में उल्लेखित सिद्धांतों को आजमाकर देख सकें।*] [*पियरे जोसेफ प्रोदोन (1809-1865), फ्रांस के सामाजिक विचारक और प्रयोगवादी। राजनीतिक और आर्थिक मामलों के ख्यात लेखक। जीवन के अधिकांश हिस्से में क्रांतिकारी और विद्रोही सोच के रहे। बास्तियात की उनसे उनकी बिना ब्याज के कर्ज की योजना पर जमकर बहस हुई थी-ट्रांसलेटर।*] के समर्थक और शास्त्रसंगत बातों को मानने वाले, संरक्षणवादी सभी न केवल अपने विशेष विचारों का त्याग करें, खासतौर

पर समूहों और सिपाहियों के झुंडों का, सामाजिक प्रयोगशालाओं और ब्याजमुक्त बैंकों के आम विचार का जरूर त्याग करें। ग्रीको-रोमन नैतिकता और वाणिज्य प्रतिबंध का भी। मैं उनसे मांग करता हूं कि वे हमें उनकी योजनाओं के निर्धारण का अधिकार दें और परोक्ष या अपरोक्ष रुप से, अगर हमें उनसे हमारे हितों के लिए नुकसानदेह या हमारी अंतरात्मा के प्रतिकूल होने का पता चलता है तो उनसे नहीं जुड़ने का भी अधिकार हमें दिया जाए।

क्योंकि उनकी कर निर्धारण की मांग और सरकार का बलप्रयोग का अधिकार, दमनकारी और लूटखसोट से भरा, इस घातक पूर्व मान्यता की ओर इशारा करता है कि सामाजिक व्यवस्था का निर्धारक अमोघ है और बाकी की मानवजाति नाकाबिल है। और अगर मानव जाति अपने बारे में कोई फैसला लेने के लिहाज से नाकाबिल है तो फिर भला वो किस तरह से पूरी दुनिया में हमें मताधिकार देने की मांग का समर्थन कर सकते हैं?

विचारों का यह विरोधाभास दुर्भाग्य से ऐतिहासिक तथ्यों में भी दिखाई देता है। फ्रांसीसी लोग जहां अधिकारों या राजनीतिक हकों को हासिल करने के मामले में दुनिया के तमाम देशों से आगे हैं, वे ही सबसे ज्यादा शासित, अनुशासित, प्रशासित, बंधक और शोषित हैं।

फ्रांस साथ ही और अनिवार्यतः वह देश हैं जहां क्रांतियां होना आम बात है।

एक बार हम तमाम राजनीतिक विचारकों द्वारा स्वीकार्य इस सोच से शुरूआत करते हैं, जिसका एम. लुईस लां ने इतने ज्यादा उत्साह के साथ वर्णन किया हैः 'समाज का प्रेरक बल सरकार है।' एक बार अगर इंसान यह स्वीकार ले कि वह ग्रहणशील, जड़ और अपनी बुद्धिमत्ता और ऊर्जा के बूते सुधार के लिहाज से नाकाबिल है तो वह बस कानून से ही हर बात की अपेक्षा करने लगता है। उसका और सरकार का वही नाता हो जाता है जो एक भेड़ का गडेरिये के साथ होता है। ऐसे में साफ हो जाता है कि सरकार की जिम्मेदारी बहुत ज्यादा है। अच्छाई और बुराई, कदाचार और सदाचार, समानता और विषमता, समृद्धि और गरीबी, सभी इसी की देन है। सारी बातें इसी पर निर्भर हैं, यह सारी बातों की जिम्मेदारी लेती है और यही सबकुछ करती है। इसलिए यही सब बातों के लिए जिम्मेदार है।

अगर हम खुश हैं तो इसे हमारी कृतज्ञता मिलनी चाहिए और अगर इसने हमें बर्बाद कर दिया है तो यह अकेला इसके लिए दोषी है। या यह सिद्धांततः हमारे व्यक्तित्व और हमारी संपत्ति को स्थानांतरित (डिस्पोज) नहीं करता? या कानून सर्वशक्तिमान नहीं है? शिक्षा में एकाधिकार के साथ इसने परिवारों के उन पितृपुरुषों की उम्मीदों को पूरा करने का काम अपने हाथ में ले लिया है जो खुद अपनी आज़ादी खो चुके हैं और अगर इन उम्मीदों में भी उन्हें धोखा ही हाथ लगता है तो यह किसकी गलती होगी? उद्योगों के विनियमन (रेगुलेटिंग) के साथ उसने उनकी तरकी का काम अपने हाथ में ले लिया है, वरना तो उनकी आज़ादी

छीनना बेहूदगी ही होता, लेकिन अगर उद्योगों को नुकसान होता है तो यह किसकी गलती होगी? प्रशुल्कों के जरिये उद्योगों का संतुलन बिगाड़कर सरकार ने कारोबार की उन्नति का काम हाथ में लिया है और अगर अवनति होती है तो यह किसकी गलती होगी? जहाजरानी उद्योग को उसकी स्वतंत्रता के ऐवज में इसने इस उद्योग को भी लाभदायक बनाने का काम हाथ में लिया है और अगर घाटा होता है तो यह किसकी गलती होगी?

इसलिए देश में महज एक ऐसी बुराई नहीं है जिसके लिए सरकार ने खुद को स्वेच्छा से जवाबदेह ठहराया हो। क्या यह चौंकाने वाला है, तब तो हर छोटी सी टीस को एक क्रांति का कारण बनना चाहिए ?

और इस समस्या का हल क्या सुझाया गया है? कानून का दायरा असीमित कर देने का सुझाव यानी कि सरकार की जिम्मेदारी का।

लेकिन अगर सरकार पारिश्रमिक मुहैया कराने और उसके विनियमन का जिम्मा लेती है और जो वह ऐसा नहीं कर पाती, अगर वह हर अभागे की मदद करना चाहती है और ऐसा नहीं कर पाती, अगर वह सभी श्रमिकों को पेंशन देना चाहती है और नहीं दे पाती है, अगर यह सभी मजदूरों को काम के औजार देना चाहती है और नहीं दे पाती है, अगर यह कर्ज की चाहत रखने वाले सभी लोगों को ब्याजरहित कर्ज देना चाहती है और नहीं दे पाती है, अगर, उन शब्दों में जो एम.डी लामार्टिन ने लिखे थे और जिसके लिए हमें अफसोस है, 'सरकार जनता की आत्मा को सुशिक्षित, विकसित, प्रगतिशील, मजबूत, आदर्श और पवित्र बनाने का काम स्वीकार लेती है,' और अगर यह नाकाम होती है तो यह जाहिर सा नहीं है कि हर नाकामी के बाद (अफसोस कि इसकी बहुत ज्यादा संभावना है), एक अवश्यंभावी क्रांति होगी?

अपने विषय पर लौटते हुए मैं घोषणा करता हूं, आर्थिक विज्ञान और राजनीतिक विज्ञान[7] के बीच विभाजन रेखा की तरह, कि एक महत्वपूर्ण सवाल उठ खड़ा हुआ है।

और यह सवाल हैः

कानून क्या है? यह कैसा होना चाहिए? इसके अधिकार क्षेत्र कितना व्यापक है? इसकी सीमाएं क्या हैं? इसके परिणामस्वरुप लेजिस्लेटरों के विशेषधिकार आखिर कहां जाकर खत्म होते हैं?

मैं यह जवाब देने में नहीं हिचकिचाताः कानून एक संगठित बल है जो अन्याय के विरोध के लिए गठित किया गया है। संक्षेप में कहा जाए तोः कानून न्याय है।

यह सही नहीं है कि लेजिस्लेटर को हम लोगों के व्यक्तित्व और संपत्ति पर पूरा अधिकार है, क्योंकि वो तो उसके पहले से अस्तित्व में हैं, हमारा काम, हमारा कारोबार, हमारी प्रतिभा और हमारा मनोरंजन।

इसका काम तो इन सभी मामलों में एक व्यक्ति को दूसरे के अधिकारों के हनन से रोकना है।

इस काम के लिए चूंकि इसे बल मिला हुआ है, कानून अपने विधिसम्मत अधिकार क्षेत्र में ही इस विधिसम्मत बल का उपयोग कर सकता है, वह अधिकार क्षेत्र जिसका नाम है न्याय।

और चूंकि हर व्यक्ति को आत्मरक्षा का विधिसम्मत अधिकार हासिल है, सामूहिक बल, जो कि व्यक्तिगत बल का ही समूहीकरण है, तार्किक तौर पर किसी और काम के लिए इस्तेमाल नहीं किया जा सकता।

इसलिए कानून केवल पहले से मौजूद आत्मरक्षा के व्यक्तिगत अधिकार का ही संगठित स्वरुप है।

कानून न्याय है।

यह कहना झूठा होगा कि यह किसी व्यक्ति के निजत्व का दमन करेगा या उसकी संपत्ति को लूट लेगा, भले ही फिर ऐसा करने के पीछे का उद्देश्य किसी की भलाई हो, क्योंकि यह अपने आप में विरोधाभासी होगा। कानून हमारे व्यक्तित्व या हमारी संपत्ति को लेकर तब तक कोई कदम नहीं उठा सकता जब तक कि वह उनकी रक्षा सुनिश्चित नहीं करता। यह इसी तथ्य से निजी स्वतंत्रता और संपत्ति के अधिकार का उल्लंघन कर देता है कि यह काम करता है, कि यह अस्तित्व में है।

कानून न्याय है।

यह एक साफ, सादी, स्पष्टतया परिभाषित और सीमांकित बात है जो हर समझदार की पहुंच में है, हर आंख को दिखाई देती है क्योंकि हर बात का न्याय तय और अपरिवर्तनीय है, न कम न ज्यादा।

अगर आप इससे परे जाकर कानून को सांप्रदायिक, बंधुत्व, समतावादी, परोपकारी, औद्योगिक, साहित्यिक या कलात्मक चोला पहनाते हैं तो यह अस्पष्टता, अनिश्चितता की गर्त में और एक अनजान से काल्पनिक दुनिया में चला जाएगा। इससे भी बुरी बात तो यह होगी कि कई काल्पनिक बातें भी कानून पर नियंत्रण की कोशिश करने लगेंगी, क्योंकि बंधुत्व और परोपकार की न्याय की तरह कोई तय सीमा नहीं है। आप सीमारेखा आखिर कहां खींचेंगे? एम. डी सेंटक्रिक [*पियरे लौरेंट बार्थेलेमी, कोमते डी सेंटक्रिक, चैंबर ऑफ डेप्युटीज के सदस्य और 4 जनवरी 1828 से 8 अगस्त 1829 तक वाणिज्य मंत्री।*] जैसा कोई अपना परोपकार केवल कुछ उद्योगों तक ही सीमित कर देगा और यह मांग कर देगा कि कानून उपभोक्ताओं पर शिकंजा कसे ताकि उत्पादकों का भला हो सके। एम.कांसिदेरांत की तरह कोई अन्य, श्रमिकों के हितों का रखवाला उन्हें न्यूनतम कपड़ा, मकान, रोटी और जरूरत की अन्य सभी

बातें उपलध कराने के लिए कानून बनाने की मांग कर देगा। तीसरे शख्स, एम. लुईस लां, कहेंगे और काफी सही तरीके से, यह और कुछ नहीं बंधुत्व का एक आधा-अधूरा सा चित्रण है और कानून को हर एक के लिए उत्पादन के औजार और शिक्षा के साधन उपलब्ध कराना चाहिए। एक और चौथा कोई आएगा जो यह कहेगा कि इन व्यवस्थाओं के बाद भी विषमता कायम है और कानून को सुदूर गांवों तक भी विलासिता, साहित्य और कला को पहुंचाना चाहिए। इस तरह से आप सीधे साम्यवाद की गोद में पहुंच जाएंगे या फिर कानून वह हो जाएगा, जो वह पहले से ही है, बेकाबू सपनों और असीमित स्वार्थ का युद्धक्षेत्र।

कानून न्याय है।

अगर हम इस परिभाषा को स्वीकारते हैं तो हम एक ऐसी सरकार की कल्पना कर सकते हैं जो साधारण और स्थायी हो। और मैं हर एक को चुनौती देना चाहूंगा कि अगर हमारा पुलिस बल केवल अन्याय के खिलाफ ही काम करेगा तो फिर क्रांति, बगावत या दंगे तक की नौबत ही कहां से आएगी। ऐसे शासन में ज्यादा समृद्धि तो होगी ही समृद्धि का बंटवारा भी बराबर ही होगा। और जहां तक मानवता की परेशानियों और कष्टों की बात है तो कोई इसके लिए सरकार को दोषी ठहराने की बात सपने में भी नहीं सोचेगा। सरकार की इसमें उतनी ही भागीदारी होगी जितनी कि तापमान में बदलाव की। क्या कभी लोगों को आपने न्यूनतम पारिश्रमिक, ब्याजमुक्त कर, उत्पादन के औजार, संरक्षित प्रशुल्क (प्रोटेटिव टेरिफ्स) या सरकारी वर्कशॉप के लिए कोर्ट ऑफ अपील्स में क्रांति करते या किसी न्यायाधीश के कक्ष में घुसते देखा है? वे अच्छी तरह से जानते हैं कि यह परियोजनाएं मजिस्ट्रेट के अधिकार क्षेत्र के बाहर की बात है और वक्त के साथ उनको यह भी पता चल जाएगा कि यह कानून के दायरे के भी बाहर की बात है।

लेकिन कानून को भाईचारे पर आधारित कर दें। यह घोषणा कर दें कि हर अच्छी और बुरी बात इसमें से ही आती है, कि यही हर व्यक्तिगत बुराई के लिए जिम्मेदार है, सभी सामाजिक कुरीतियों के लिए भी। और आपके पास शिकायतों, रोष, अशांति और क्रांतियों का अंबार लग जाएगा।

कानून न्याय है।

और यह वाकई अजीब ही होगा कि यह कुछ और हो! क्या न्याय अच्छी बात नहीं है? क्या अधिकार समान नहीं हैं? फिर भला किस अधिकार से कानून हस्तक्षेप करके मुझे मेसर्स, मिमेरेल, डी मेलन, थियर्स [*आरमंड डी मेलन (1807-1877), एक मशहूर परोपकारी, सोसायटी ऑफ सेंट विनसेंट डी पॉल के नेता, राजनीति में एक नरमपंथी अनुदार (मॉडरेट कंजर्वेटिव)।*] [*लुईस एडॉल्फ थियर्स (1797 -1877), फ्रांसीसी राजनयिक और इतिहासकार, मुक्त व्यापार के*

विरोधी और बास्तियात के वक्त में फ्रांस के लिए अंग्रेज विरोधी नीति के आक्रामक पक्षधर।] या लुईस लां की सामाजिक व्यवस्थाओं को स्वीकारने के लिए कह सकता है, बनिस्बत इसके कि मैं अपनी व्यवस्था इन सज्जनों पर थोप सकूं? क्या यह मान लिया जाए कि मुझे कुदरत ने इतनी कल्पनाशक्ति नहीं दी कि मैं भी अपना कल्पनालोक बना सकूं? क्या यह कानून का काम है कि इतने ढेर सारे अस्थिर और जड़ विचारों में से एक का चयन कर सरकारी सुरक्षा बलों को उसे पूरा करने के लिए झोंक दे?

कानून न्याय है।

और इसे लगातार निरंतर न कहें जैसा कि अभी किया जा रहा है कि ऐसा होने पर कानून नास्तिक, व्यक्तिवादी, दयाहीन होने के कारण इंसान को आइने में उसका ही चेहरा दिखा देगा। यह एक बेहूदा हस्तक्षेप है, सरकार के साथ मूर्खतापूर्ण आकर्षण के लिए जो इंसान को बस कानून की ही कृति समझता है।

चूंकि हमें आजाद होना चाहिए तो क्या इसका मतलब है कि हम कुछ भी करना छोड़ देंगे? चूंकि हमें सरकार से प्रेरणा की शक्ति नहीं मिल रही तो इसका यह मतलब है कि हम प्रेरणा की शक्ति से वंचित हो जाएंगे? चूंकि सरकार ने अपने आपको हमारी काबिलियत के खुलकर इस्तेमाल की आज़ादी देने तक ही सीमित कर लिया है, तो इसका यह मतलब तो नहीं कि हमारी काबिलियत खत्म हो जाएगी? कानून हम पर संप्रदाय, मेलजोल के साधन, शिक्षा के तरीके, श्रम कानून, व्यापार विनियमन या सहायतार्थ योजनाएं हम पर थोपेगा तो क्या इसका यह मतलब है कि हम नास्तिकता, एकाकीपन, अज्ञान, गरीबी और स्वार्थ में डूब जाएंगे?

क्या इसका मतलब यह है कि हमारी भगवान की ताकत और अच्छाई को पहचानने की क्षमता समाप्त हो जाएगी, हम एक दूसरे से मेलजोल, एक दूसरे की मदद, प्यार करना भूल जाएंगे और अपनी नस्ल के लोगों की मदद करना बंद कर देंगे और खुद को बेहतर बनाने के प्रयास और प्रकृति का अध्ययन भी छोड़ देंगे?

कानून न्याय है।

और यह न्याय के कानून के तहत, अधिकारों के कानून के तहत, स्वतंत्रता, सुरक्षा, स्थायित्व और जिम्मेदारी के प्रभाव के तले ही संभव है कि हर व्यक्ति अपनी पूरी कूवत और गरिमा हासिल कर सके। इंसान शांत भाव से व्यवस्थित रूप से, धीमे लेकिन बिना किसी शक पूरे विश्वास के साथ वह तरक्की करे जो उसका तय भविष्य है।

मुझे लगता है कि तर्क मेरे पक्ष में है। क्योंकि मैं जो भी सवाल अपने सिद्धांत के सामने रखता हूं, फिर वह चाहे सांप्रदायिक हो, दार्शनिक हो, राजनीतिक हो या आर्थिक, इसका संबंध

भलाई, नैतिकता, समानता, अधिकार, न्याय, तरक्की, जिम्मेदारी, अखंडता, संपत्ति, श्रम, व्यापार, पूंजी, पारिश्रमिक, कर, आबादी, कर्ज या सरकार चाहे जिससे हो, चाहे जितने विज्ञानसम्मत आधार पर मैं काम शुरू करुं, वे एक ही निष्कर्ष पर पहुंचते हैं: सामाजिक समस्याओं का समाधान स्वतंत्रता में है।

और क्या अनुभव भी मेरे पक्ष में नहीं है? आज दुनिया की हालत देखिए। कौनसे देश खुश हैं, सबसे नैतिक और सबसे शांत हैं? वे ही देश जहां कानून लोगों की निजी जिंदगी में बहुत कम हस्तक्षेप देता है, जहां सरकार खुद को गौण मानकर चलती है और जहां व्यक्ति को सबसे ज्यादा मौके उपलध हैं और आम राय का सबसे ज्यादा प्रभाव होता है, जहां प्रशासन कम जटिल है, कर सबसे कम भारी और सबसे कम असमान हैं, आम हड़ताल बहुत कम होती है और उसे जनसमर्थन भी नहीं मिलता, जहां व्यक्ति और वर्ग को जिम्मेदारियों का पूरा अहसास है और जहां अगर नैतिकता का स्तर ठीक नहीं है तो इसमें सुधार की प्रक्रिया तो चल ही रही होगी, जहां आदान-प्रदान, सहमति और संगठन में न्यूनतम हस्तक्षेप है, जहां श्रम, पूंजी और आबादी का कृत्रिम स्थानांतरण बहुत कम होता है, जहां मानव जाति अपने कुदरती रूझानों पर चलती है, जहां भगवान की सोच सर्वोपरि है, जो हमें इस निष्कर्ष तक पहुंचा देता हैः न्यायसंगतता की परिधि में इंसान के मुक्त और स्वप्रेरित कदम से हर एक बात हासिल की जानी है, कुछ भी हासिल करने का काम कानून या बल से नहीं लिया जाता, सार्वजनिक न्याय की तो फिर बात छोड़ ही दीजिए।

यह तो कहा ही जाना चाहिए कि दुनिया में ढेर सारे 'महान' व्यक्ति हैं, ढेर सारे लेजिस्लेटर, योजनाकार, समाजों के संस्थापक, देशों के नेता, देशों के पितामह आदि, आदि। ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो खुद को मानव जाति से ऊपर समझते हैं ताकि उनको अपने पदचिन्हों पर चलने के लिए कह सकें, कई लोग आम आदमी की चिंताओं को ही अपना कैरियर बना लेते हैं।

मुझे बताया जाना चाहिएः तुम खुद इन बातों को लेकर काफी चिंतित हो।

यह सही है। लेकिन यह भी मानना होगा कि मेरी चिंता बिलकुल अलग ही परिप्रेक्ष्य में है और अलग ही उद्देश्य के साथ। अगर मैंने सुधारकों के बीच अपनी जगह बनाई तो केवल इसलिए कि मानवजाति को उनके चंगुल से आजाद कर सकूं।

मेरी मानवजाति के लिए चिंता वॉकेनसन [जैस डी वॉकेनसन (1709 -1782), उनकी ख्याति उनकी रचनाओं द फ्ल्यूट प्लेयर और द डक में दर्ज ऑटोमेटन पर ही टिकी हुई है।] के ऑटोमेटन (क्षणिकाएं) के साथ व्यवहार की तरह नहीं है, लेकिन एक चिकित्सक की मानव अंगों को लेकर चिंता जैसी है, उसके अध्ययन के लिए उसे बेहतर बनाने के लिए।

मेरी चिंता एक मशहूर यात्री की तरह ही है।

वह एक जंगली कबीले के बीच पहुंचा। एक बच्चा अभी हुआ ही था, और बालियों, अंगूठियों और पट्टियों के साथ नीमहकीमों, तांत्रिकों ने उसे घेर रखा था। एक ने कहाः 'अगर मैं इसके नथुनों को चौड़ा नहीं करुंगा तो यह उम्रभर किसी चीज को सूंघ नहीं सकेगा।' दूसरे ने कहा, 'अगर मैं इसके कानों को उसके कंधे तक नहीं खींचूंगा तो यह जिंदगी भर सुन नहीं सकेगा।' तीसरे ने कहा, 'अगर मैंने इसकी आंख को कुछ तिरछा नहीं किया तो वह जिंदगी भर सूरज की रोशनी नहीं देख सकेगा।' चौथे ने कहा, 'अगर मैंने इसके पैर नहीं मोड़े तो वह जिंदगी भर ठीक से खड़ा नहीं हो सकेगा।' पांचवें ने कहा, 'अगर मैंने इसकी खोपड़ी को सपाट नहीं किया तो वह जिंदगी भर सोच नहीं सकेगा।'

'ठहरो,' उस यात्री ने कहा, 'भगवान जो भी करता है अच्छा ही करता है। उससे ज्यादा ज्ञानवान होने का नाटक मत करो और चूंकि उसने ही इस नन्हे को सारे अंग दिए हैं तो इनको वर्जिश, गलती और सुधार, अनुभव और स्वतंत्रता के साथ विकसित होने दो।'

भगवान ने मानवजाति को वह सब दिया है जो उसे अपने भविष्य के निर्धारण में मदद कर सकता है। एक दैवीय सामाजिक शरीर विज्ञान (प्रॉविडेंशियल सोशल फिजियोलॉजी) की तरह ही एक दैवी व्यक्तिगत शरीर विज्ञान (प्रॉविडेंशियल इंडिविजुअल फिजियोलॉजी) भी है। सामाजिक संस्थानों की स्थापना भी ऐसी ही की जाती है कि वे स्वतंत्रता के माहौल में एक स्वर में विकसित हो सकें।

तो फिर नीम हकीमों और योजनाकारों को उनके छल्लों, चेनों, हुस, चिमटों सहित विदा कहो। उनकी कृत्रिम पद्धतियों को अलविदा कहो। उनकी सामाजिक वर्कशॉप्स, उनके झुंड, उनके सरकार में हस्तक्षेप, उनके केंद्रीयकरण, उनके प्रशुल्क, उनके विश्वविद्यालय, उनका राजधर्म, उनके ब्याजमुक्त कर्ज और बैंक एकाधिकार, विनियमन, प्रतिबंध, उनके उपदेश और उनका करों के जरिये बराबरी दिलाने का तरीका सबको भूल जाओ। और बेफजूल में राजनीति पर इतने तंत्र थोपने के, हम वहीं बात को खत्म करें, जहां से शुरूआत की थी। आइए हम तमाम कृत्रिम तंत्रों की छुट्टी करके स्वतंत्रता को एक मौका दें स्वतंत्रता, जो भगवान में यकीन का एक कदम है और उसके काम में भी यकीन दिखाना है।

नोट्स

1. जून 1850 में परिवार के साथ मुगरॉन में बिताए दिनों के दौरान लेखक ने यह पैम्फ्लेट लिखा था-संपादक।

2. निबंध "प्लंडर एंड लॉ" के दो अंतिम पन्ने देखें (इस खंड के अध्याय 8 में)-संपादक।

3. जनरल काउंसिल ऑफ मैन्युफैक्चरिंग, एग्रीकल्चर एंड कॉमर्स (6 मई 1850 का सत्र)-संपादक।

4. अगर फ्रांस में एक ही वर्ग को संरक्षण दिया गया, जैसे उदाहरण के लिए, लौहसंयंत्र के मालिक, तो यह इतना ज्यादा नुकसानदेह होगा कि इसको कायम रख पाना नामुमकिन होगा। इसलिए हमने देखा कि संरक्षित उद्योग इस तरह से एक ही उद्देश्य से काम करते हैं और लोगों को रोजगार भी देते हैं जिससे यह आभास हो मानो वह सभी तरह के उद्योगों का पोषण कर रहे हों। वे यह बात मान लेते हैं कि अगर लूट को सार्वजनिक कर देने से इसे बेहतर तरीके से छिपाया जा सकता है।

5. पैम्फ्लेट "एकेडेमिक डिग्रीज एंड सोशलिज्म" (इस खंड का 9वां अध्याय) में लेखक प्रशंसापत्रों के जरिये यह बताने की कोशिश करता है कि कैसे एक ही गलती भूतकाल से चली आ रही है।-संपादक

6. एक देश के खुश रहने के लिए जरूरी है कि इसमें शामिल नागरिकों में सुरक्षा के भाव से उपजी दूरदृष्टि, विवेक और एक-दूसरे में विश्वास हो।

7. राजनीतिक अर्थशास्त्र को राजनीतिक शास्त्र पर तरजीह दी जाती है। राजनीतिक अर्थशास्त्र यह तय करता है कि इंसान की रूचियां क्या कुदरती तौर पर सामंजस्यपूर्ण और विरोधी हैं। राजनीतिक शास्त्र को सरकार के परमाधिकारों (prerogatives) की स्थापना से पहले यह बात पता होनी चाहिए।

अब ये चीजें अनुभव से ही हासिल की जा सकती हैं। लोग दूरदृष्टा हो जाते हैं जब वे ऐसा नहीं होने के कारण भुगतते हैं, विवेकपूर्ण जब उनकी विवेकहीनता को दंडित किया जाता है आदि, आदि। इससे यह पता चलता है कि स्वतंत्रता की शुरूआत हमेशा बुराईयों के साथ होती है जो उसके अनसोचे इस्तेमाल के कारण पैदा होती हैं।

इसे देखकर एक ऐसा व्यक्ति खड़ा होता है जो यह मांग करता है कि स्वतंत्रता को निषिद्ध करने की मांग करता है, "सरकार को सबके लिए दूरदृष्टा और विवेकपूर्ण होने दें।"

मैं उनसे यह सवाल पूछना चाहूंगाः

1. क्या यह संभव है? क्या एक गैरअनुभवी देश से एक अनुभवी सरकार तैयार हो सकती है?

2. किसी भी सूरत में क्या यह शुरूआत से ही अनुभव में इजाफे का कारण नहीं बनेगी? अगर लोगों पर तय कानून लादे जाएंगे तो परिणामों से हर एक क्या सबक लेगा? तो क्या वह फिर हमेशा ही अपने सिर पर किसी छत्र की उम्मीद करेगा?

और सरकार हर बात के लिए आदेश देने के कारण, हर बात के लिए जिम्मेदार भी होगी। इसी में क्रांति के कभी भी खत्म न होने वाले बीज छिपे हुए हैं। यह क्रांति उन लोगों द्वारा की जाएगी जिनके लिए अनुभव की ही तरह प्रगति भी रूक गई है।

(यह टिप्पणियां लेखक की पांडुलिपि से ली गई हैं)

—0—